प्रकाशक—
मूलचन्द किसनदास कापड़िया
ऑ० सम्पादक दिगम्बर जैन व प्रकाशक
जैनमित्र तथा मालिक दिगम्बर जैन
पुस्तकालय-सूरत ।
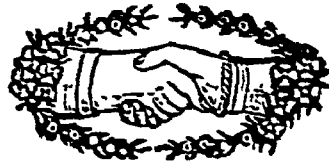
आभार ।

प्रिय पाठकवृन्द !

जैन जातिका इतिहास जितना विशद और फिर तितर-वितर है, उसको देखते हुये इस 'संक्षिप्त' रूपमें उसके पूर्ण दर्शन पाना अशक्य ही है । तौभी इस संक्षिप्त संस्करणसे यदि आप लाभ उठायेंगे तो अवश्य ही हम अपने प्रयत्न सफल हुये समझेंगे । वस्तुतः समाजोत्थानके कार्यमें उस समाजका इतिहास विशेष कार्यकारी होता है अतएव इससे समाजको लाभ पहुंचना बिलकुल संभव है। अस्तु ।

इस 'संक्षिप्त इतिहास' के संकलनमें जिन श्रोतोंसे हमने सहायता ग्रहण की है, उन सबके प्रति हार्दिक आभार स्वीकार करना आवश्यक है । तथापि जैनधर्मभूषण धर्मदिवाकर ब्रह्मचारी श्री शीतलप्रसादजीने इसकी लिखित कापीको पढ़कर हमें उचित सम्मतियाँ प्रदान की थीं, उनके लिये हम आपके विशेष आभारी हैं अथच इसी सम्बन्धमें हम अपने प्रिय मित्र श्रीयुत् प्रोफेसर हीरालालजी जैन एम० ए०, एल० एल० बी०को भी नहीं भूल सक्ते हैं । आपने ही हमारे कहनेपर इस पुस्तककी भूमिका लिखी है; जिसके लिए हम विशेष रीतिसे आपको हार्दिक धन्यवाद समर्पित करते हैं । सचमुच आपसे समाजको बड़ी आशायें हैं । श्री भा० दि० जैन परिषद्के प्रस्तावानुसार आप एक विशद जैन इतिहास तैयार करनेके कार्यमें सलग्न हैं । हमारी भावना है कि वह दिन शीघ्र आए जब आप द्वारा प्रणीत 'विशद इतिहास' समाजके हाथोंमें हो और वह उससे पूर्ण लाभ उठावे ! एवम् भवतु ! इति शम् !

हैदराबाद सिंध
१-३-१९२६

आपका-
कामताप्रसाद जैन ।

शुद्धिपत्र ।

पृष्ठ	लाइन	अशुद्ध	शुद्ध
१	९	जन	जैन
५	६	जुर्वेद	यजुर्वेद
	१७	७ वीं	६ ठी व ७ वीं
	१९	Dialoghies	Dialogues
८	१२	फरलॉना	फरलॉन्ना
३	१४	मुसलमन	मुसलमान
१०	७	उपर्णेल्लिखित	उपरोल्लिखित
१८	४	उसे	उस
६८	१४	जेक्रियों	जैनियों
,,	Foot Note	Diaiogues	Dialogues
७३	२१	वर्ण	वर्णन
७५	१७	कहता	करता
७६	२०	गानवि	गानविद्या
७६	२३	ध्यम	मध्यम
८१	१	परिच्छिद	परिच्छेद
,,	२	जैनधम	जैनधर्म
९३	२	ओर	और

विषयसूची।

नं० विषय पृष्ठ

१–भूमिका (प्रो० हीरालाल जैन एम० ए० एल. एल. बी. लि०) ३

२–प्रस्तावना। १

जैन धर्मकी ऐतिहासिक प्राचीनता, ऐतिहासिक कालके पहिले जैनधर्म, क्या जैनी भारतके मूलनिवासी हैं? जैनदर्शन आर्य दर्शन है और जैनी आर्य्य हैं, पूर्वी आर्य्य म्लेच्छ और प्राचीन आर्य्य, वेदोंमें यज्ञ विषय पहिले नहीं था, आर्य्य व अनार्य्य, भारतकी जातियां, भाषाएं-धर्म्म, इतिहासकी आवश्यकता, जैन इतिहासके काल विभाग।

पहिला परिच्छेद।

३–जैन भूगोलमें भारतवर्षका स्थान १

४–भारतवर्षका संक्षिप्त विवरण ३

५–भारतकी प्राचीन अर्वाचीन आकृति ६

द्वितीय परिच्छेद।

६–भरतक्षेत्रमें समयचक्र और भोगभूमिका काल ११

तृतीय परिच्छेद।

७–भगवान ऋषभदेव और कर्मभूमिकी प्रवृत्ति २५

चतुर्थ परिच्छेद।

८–अवशेष तीर्थंकर व अन्य महापुरुष ४८

पंचम परिच्छेद।

९–आर्षवेद अर्थात् द्वादशांगवाणी। ६८

षष्ठम परिच्छेद।

१०–आर्ष वैदिक धर्म, जैनधर्म और उसकी सभ्यता ८१

भूमिका।

इतिहासकी आवश्यक्ता।

जिस प्रकार किसी व्यक्तिविशेषकी मान-मर्यादाके लिये उसका पूर्व-वृत्तान्त जानना आवश्यक है, उसी प्रकार किसी देश व समाजको वर्तमान संसारमें सन्मान प्राप्त करनेके लिये अपना इतिहास उपस्थित करनेकी आवश्यक्ता है। एक विद्वान्का कथन है कि भारतवर्षकी संसारमें आज जो कदर होना चाहिये वह इसी कारणसे नहीं होती कि संसारको इस देशके सच्चे और गौरवपूर्ण इतिहासका पता नहीं है। यह उक्ति जैन धर्मके विषयमें और भी विशेषरूपसे घटित होती है। संसारकी विद्वत्समाजमें जो आज जैनधर्मके विषयमें अनेक भ्रम-पूर्ण कल्पनायें और मत फैले हुए हैं उनका मूल कारण यही है कि अभीतक जैन धर्मका सच्चा इतिहास संसारके सन्मुख नहीं रक्खा गया। जबतक यह कमी सुचारुरूपसे पूरी नहीं की जायगी तबतक न तो उन भ्रम पूर्ण कल्पनाओंका निराकरण हो सक्ता और न जैनधर्मका गौरव संसारमें बढ़ सक्ता है।

प्रामाणिक इतिहासके साधन।

एक समय था जब मनुष्योंकी ऐतिहासिक लालसा किसी प्रकारकी भी दैवी व मानुषी घटनाओंके पढ़ने सुननेसे तृप्त हो जाती थी, पर आजकल इतिहासका अर्थ कुछ और ही होगया है। आजकल केवल वे ही घटनायें इतिहास क्षेत्रमें मान्य होसक्ती हैं जो प्राकृतिक नियम व मानवीय युक्तिके अविरुद्ध होती हुई निम्नलिखित

आधारों द्वारा अपनी प्रामाणिकता सिद्ध करती हैं:—

१ तात्कालिक शिलालेख, ताम्रपत्र, मुद्रा आदि।

२ सामयिक ग्रन्थ।

३ पुरातत्व सम्बंधी ध्वंशावशेष।

४ कुछ समय पीछेके शिलालेखादि व ग्रन्थादि।

उक्त चार प्रकारके साधन ही आजकल इतिहास निर्माणके उपयुक्त साधन गिने जाते हैं। इन साधनोंकी यथोचित ऊहापोहके पश्चात् जो इतिहास तैयार किया जाता है वही सर्वतः मान्य होता है। इन चार साधनोंमें भी क्रमशः ऊपर ऊपरवाला साधन अपनेसे नीचेवाले साधनसे अधिक बलवान् प्रमाण गिना जाता है।

इतिहासातीत काल।

भारतवर्षके प्राचीन इतिहासके लिये विक्रम संवत्के चार पांचसो वर्ष पूर्वसे इस तरफके लिये तो उपर्युक्त चारों प्रकारके साधन थोड़े बहुत प्रमाणमें उपलब्ध हुए हैं, पर इससे पूर्वके इतिहासके लिये इन सब साधनोंके अभावमें हमें केवल प्राचीन ग्रन्थोंका ही सहारा लेना पड़ता है। इसीलिये वैज्ञानिक इतिहासकार इस कालको इतिहासातीत काल कहते हैं।

जैनधर्मका सर्व मान्य इतिहास महावीर स्वामीके समयसे व उससे कुछ पूर्वसे प्रारम्भ होता है।

जैन पुराणोंकी प्रमाणिकता।

इससे पूर्वके इतिहासके लिये एक मात्र सामग्री जैनधर्मके पुराण ग्रंथ हैं। इन पुराणग्रन्थोंके रचनाकाल और उनमें वर्णित घटनाओंके कालमें हजारों, लाखों, करोड़ों नहीं

अरवों खर्वों वर्षोंका अन्तर है। अतएव उनकी ऐतिहासिक प्रामाणिकता इस वातपर अवलंबित है कि वे कहांतक प्राकृतिक नियमोंके अनुकूल, मानवीय विवेकके अविरुद्ध व अन्य प्रमाणोंके अप्रतिकूल घटनाओंका उल्लेख करते हैं। यदि ये घटनायें प्रकृति विरुद्ध हों, मानवीय बुद्धिके प्रतिकूल हों व अन्य प्रमाणोंसे वाधित हों तो वे धार्मिक श्रद्धाके सिवाय अन्य किसी आधारपर विश्वसनीय नहीं मानी जा सकीं, पर यदि वे उक्त नियमों और प्रमाणोंसे वाधित न होती हुई पूर्वकालका युक्ति संगत दर्शन कराती हों तो उनकी ऐतिहासिकतामें भारी संशय करनेका कोई कारण नहीं होसकता।

जिन इतिहास विशारदोंने जैन पुराणोंका अध्ययन किया है उनका विश्वास उन पुराणोंकी निम्नलिखित तीन वातोंपर प्रायः नहीं जमता:—

१ पुराणोंके अत्यन्त लम्बे चौड़े समय विभागोंपर।

२ पुराणोंमें वर्णित महापुरुषोंके भारी २ शरीर मापोंपर व उनकी दीर्घातिदीर्घ आयुपर।

३ कालके परिवर्तनसे भोगभूमि व कर्मभूमिकी रचनाओंके विपर्वर्तनपर।

'पल्य' और 'सागर' के मापोंकी यथार्थता।

जैन पुराणोंमें अरवों खर्वों ही नहीं पल्य और सागरों (आधुनिक संख्यातीत) वर्षोंके माप दिये गये हैं। इनको पढ़कर पाठकोंकी बुद्धि थकित होजाती है और वे झट इसे असम्भव कहकर अपने मनके वोझको हल्का कर डालते हैं, पर विषयपर निष्पक्षतः बुद्धि

पूर्वक विचार करनेसे इन मापोंमें कुछ असम्भवनीयता नहीं रह जाती। यह सभी जानते हैं कि समयका न आदि है और न अन्त। वैज्ञानिक शोध और खोजने यह भी सिद्धकर दिया है कि इस सृष्टिके प्रारम्भका कोई पता नहीं है और न उसमें मनुष्य जीवनके इतिहास प्रारम्भका ही कुछ कालनिर्देश किया जासक्ता है। सन् १८५८ ईस्वीके पूर्व पाश्चात्य विद्वानोंका मत था कि इस पृथ्वीपर मनुष्यका इतिहास आदिसे लेकर अब तकका पूरा २ ज्ञात है, क्योंकि 'बाइबिल' के अनुसार सर्व प्रथम मनुष्य 'आदम' की उत्पत्ति ईसासे ४००४ वर्ष पूर्व सिद्ध होती है। पर सन् १८५८ ईस्वीके पश्चात जो भूगर्भ विद्यादि विषयोंकी खोज हुई है उससे मनुष्यकी उक्त समयसे बहुत अधिक पूर्व तक प्राचीनता सिद्ध होती है। अब इतिहासकार ४००४ ईस्वी पूर्वसे भी पूर्वकी मानवीय घटनाओंका उल्लेख करते हैं। मिश्रदेशकी प्रसिद्ध गुम्मटों (Pyramids)का निर्माण काल ईस्वीसे पांच हजार वर्ष पूर्व अनुमान किया जाता है। खाल्दिया (Chaldea) देशमें ईसासे छह सात हजार वर्ष पूर्वकी मानवीय सभ्यताके प्रमाण मिले हैं। चीन देशकी सभ्यता भी इतनी ही व इससे अधिक प्राचीन सिद्ध होती है। अमेरिका देशमें पुरातत्व शोधके सम्बंधमें जो खुदाईका काम हुआ है उसका भी यही फल निकला है। हाल ही में भारतवर्षके पंजाब और सिन्ध प्रदेशोंके 'हरप्पा' और 'मोयनजोडेरो' नामक स्थानोंपर खुदाईसे जो प्राचीन ध्वंसावशेष मिले हैं वे भी ईसासे आठ दस हजार वर्ष पूर्वके अनुमान किये जाते हैं। ये सब प्रमाण भी हमें मनुष्यके प्रारम्भिक इतिहासके कुछ भी समीप नहीं पहुंचाते, वे केवल यही सिद्ध करते

हैं कि उतने प्राचीन-कालमें भी मनुष्यने अपार उन्नति करली थी ऐसी उन्नति जिसके लिये उन्हें हजारों लाखों वर्षोंका समय लगा होगा। अव चीन, इजिप्त, शाल्दिया, इंडिया, अमेरिका किसी ओर भी देखिये इतिहासकार ईसासे आठ २ दस २ हजार वर्ष पूर्वकी मानवीय सभ्यताका उल्लेख विश्वासके साथ करते हैं। जो समय कुछ काल पहले मनुष्यकी गर्भावस्थाका समझा जाता था वह अव उसके गर्भका नहीं बचपनका भी नहीं, प्रौढ़ कालका सिद्ध होता है। जितनी खोज होती जाती है उतनी ही अधिक मानवीय सभ्यताकी प्राचीनता सिद्ध होती जाती है। कहां है अव मानवीय सभ्यताका प्रातःकाल? इससे तो प्राचीन टोमन हमारे समसामयिकसे प्रतीत होते हैं, यूनानका सुवर्ण-काल कलका ही समझ पड़ता है। मिश्रके गुम्मटकारों और हममें केवल थोड़ेसे दिनोंका ही अन्तर पड़ा प्रतीत होता है। मनुष्यकी प्रथमोत्पत्तिका अध्याय आधुनिक इतिहास हीसे उड़ गया है। ऐसी अवस्थामें जैन पुराणकार मानवीय इतिहासके विषयमें यदि संख्यातीत वर्षोंका उल्लेख करें तो इसमें आश्चर्यकी वात ही क्या है? इसमें कौनसी असम्भाव्यता है? पुरातत्वज्ञोंका अनुभव भी यही है कि मानवीय इतिहास संख्यातीत वर्षोंका पुराना है।

दीर्घ शरीर और दीर्घायु।

दूसरा संशय महापुरुषोंके शरीर माप और उनकी दीर्घातिदीर्घ आयुके विषयका है। जो कुछ आजकल देखा सुना जाता है उसके अनुसार सैकड़ों हजारों धनुष ऊंचे शरीर व कोड़ाकोड़ी वर्षोंकी आयुपर

एकाएकी विश्वास नहीं जमता। इस विषयमें मैं पाठकोंका ध्यान उन भूगर्भ शास्त्रकी गवेषणाओंकी ओर आकर्षित करता हूं जिनमें प्राचीन कालके बडे २ शरीरधारी जन्तुओंका अस्तित्व सिद्ध हुआ है। उक्त खोजोंसे पचास २ साठ २ फुट लम्बे प्राणियोंके पाषाणावशेष (Fossils) पाये गये हैं। इतने लम्बे कुछ अस्थिपिञ्जर भी मिले हैं। जितने अधिक दीर्घकाय ये अस्थिपंजर व पाषाणावशेष होते हैं वे उतने ही अधिक प्राचीन अनुमान किये जाते हैं। इससे यही सिद्ध होता है कि पूर्वकालमें प्राणी दीर्घकाय हुआ करते थे। धीरे २ उनके शरीरका ह्रास होता गया। यह ह्रास–क्रम अभी भी प्रचलित है। इस नियमके अनुसार जितना अधिक प्राचीनकालका मनुष्य होगा उसे उतना ही अधिक दीर्घकाय मानना न केवल युक्तिसङ्गत ही है किन्तु आवश्यक है।

प्राणिशास्त्रका यह नियम है कि जिस जीवका जितना भारी शारीरिक परिमाण होगा उतनी ही दीर्घ उसकी आयु होगी। प्रत्यक्षमें भी हम देखते हैं कि सूक्ष्म जीवोंकी आयु वहुत अल्पकालकी होती है। जन्मके थोड़े ही समय पश्चात् उनका शरीर अपने उत्कृष्ट परिमाणको पहुंच जाता है और वे मृत्युको प्राप्त हो जाते हैं। जिस २ प्राणीका शरीर वढ़ता जाता है उसकी आयु भी उसीके अनुसार वढ़ती जाती है। हाथी सब जीवोंमें बड़ा है इससे उसकी आयु भी सव जीवोंमें वड़ी है। वनस्पतियोंमें भी यही नियम है। जो वृक्ष जितना अधिक विशालकाय होता है उतने ही अधिक समय तक वह फूलता फलता है। वट वृक्ष सब वनस्पतियोंमें भारी होता है, अतएव उसका अस्तित्व भी अन्य

सब वृक्षोंकी अपेक्षा अधिक काल तक रहता है। अतएव यह प्रकृतिके नियमानुकूल व मानवीय ज्ञान और अनुभवके अविरुद्ध ही है जो जैन पुराण यह प्रतिपादित करते हैं कि प्राचीनकालके अति दीर्घकाय पुरुषोंकी आयु अति दीर्घ हुआ करती थी। इसके विरुद्ध यदि जैन पुराण यह कहते कि प्राचीनकालके मनुष्य दीर्घकाय होते हुए अल्पायु हुआ करते थे या अल्पकाय होते हुए दीर्घायु हुआ करते थे तो यह प्रकृति विरुद्ध और अनुभव प्रतिकूल बात होनेके कारण अविश्वसनीय कही जासक्ती थी।

भोगभूमि और कर्मभूमि।

तीसरा शंकास्पद विषय भोगभूमि और कर्मभूमिके विपरीत वर्तनका है। जैन पुराणोंमें कथन है कि पूर्वकालमें इसी क्षेत्रके निवासी सुखसे विना श्रमके कालयापन करते थे। उनकी सब प्रकारकी आवश्यक्तायें कल्पवृक्षोंसे ही पूरी होजाया करती थीं। अच्छे और बुरेका कोई भेद नहीं था। पुण्य और पाप दोनों भिन्न प्रवृत्तियां नहीं थीं। व्यक्तिगत सम्पत्तिका कोई भाव नहीं था 'मेरा' और 'तेरा' ऐसा भेदभाव नहीं था। यह अवस्था भोगभूमिकी थी। क्रमशः यह अवस्था बदली। कल्पवृक्षोंका लोप होगया। मनुष्योंको अपनी आवश्यक्ताओंकी पूर्तिके लिये श्रम करना पड़ा। व्यक्तिगत सम्पत्तिका भाव जागृत हुआ। कृषि आदि उद्यम प्रारम्भ हुए। लेखन आदि कलाओंका प्रादुर्भाव हुआ इत्यादि। इस प्रकार कर्मभूमिका प्रारम्भ हुआ। शुद्ध ऐतिहासिक दृष्टिसे विचार करनेपर ज्ञात होता है कि इस भोगभूमिके परिव-

र्तनमें कोई अस्वाभाविकता नहीं है। वल्कि यह आधुनिक सभ्यताका अच्छा प्रारम्भिक इतिहास है। जिन्होंने सुवर्णकाल (Golden age) के प्राकृतिक जीवन (Life according to Nature) का कुछ वर्णन पढ़ा होगा वे समझ सक्ते हैं कि उक्त कथनका क्या तात्पर्य हो सक्ता है। आधुनिक सभ्यताके प्रारम्भ कालमें मनुष्य अपनी सब आवश्यक्ताओंको स्वच्छन्द वनजात वृक्षोंकी उपजसे ही पूर्ण कर लिया करते थे। वस्त्रोंके स्थानमें वल्कल और भोजनके लिये फलादिसे तृप्त रहनेवाले प्राणियोंको धन सम्पत्तिसे क्या तात्पर्य? सबमें समानताका व्यवहार था। मेरे और तेरेका भेदभाव नहीं था। क्रमशः आधुनिक सभ्यताके आदि धुरंधरोंने नाना प्रकारके उद्यम और कलाओंका आविष्कार कर मनुष्योंको सिखाया। जैन पुराणोंके अनुसार इस सभ्यताका प्रचार चौदह कुलकरों द्वारा हुआ। सबसे पहले कुलकर प्रतिश्रुतिने सूर्य चन्द्रका ज्ञान मनुष्योंको कराया। इस प्रकार वे ज्योतिष शास्त्रके आदि आविष्कर्ता ठहरते हैं। उनके पीछे सन्मति, क्षेमंकर, क्षेमंधरादि हुए जिन्होंने ज्योतिष शास्त्रका ज्ञान बढ़ाया, अन्य कलाओंका आविष्कार किया व सामाजिक नियम दण्ड विधानादि नियत किये। जैन पुराणोंने इस इतिहासको, यदि विचार किया जाय, तो सचमुच बहुत अच्छे प्रकारसे सुरक्षित रक्खा है।

धर्मके संस्थापक।

कुलकरोंके पश्चात् ऋषभदेव हुए जिन्होंने धर्मकी संस्थापना की। इनका स्थान जैसा जैन पुराणोंमें है वैसा हिन्दू पुराणोंमें भी पाया जाता है। वहां भी वे इस

सृष्टिके आदिमें स्वयंभू मनुसे पांचवी पीढ़ीमें हुए बतलाये गये हैं और वे ईशके अवतार गिने जाते हैं। उनके द्वारा धर्मका जैसा प्रचार हुआ उसका भी वहां वर्णन है। जैन पुराणोंमें कहा गया है कि ऋषभदेवने अपनी पुत्री 'ब्राह्मी' के लिए लेखनकलाका आविष्कार किया। उन्हींके नामपरसे इस आविष्कृत लिपिका नाम 'ब्राह्मी लिपि' पड़ा। इतिहासज्ञ ब्राह्मी लिपिके नामसे भली-भांति परिचित हैं। आधुनिक नागरी लिपिका यही प्राचीन नाम है। ऋषभदेवके ज्येष्ठ पुत्रका नाम भरत था जो आदि चक्रवर्ती हुए। भरत चक्रवर्तीका नाम हिन्दू पुराणोंमें भी पाया जाता है, यद्यपि उनके वंशका वर्णन वहां कुछ भिन्न है। इन्हीं भरतके नामसे यह क्षेत्र भारतवर्ष कहलाया।

हिन्दू पुराणोंमें ऋषभदेवके पश्चात् होनेवाले तीर्थंकरोंका उल्लेख अभीतक नहीं पाया गया, पर जैन ग्रंथोंमें उन सब पुरुषोंका चरित्र वर्णित है जिन्होंने समय २ पर ऋषभदेव द्वारा स्थापित धर्मका पुनरुद्धार किया। ज्यों २ हम ऐतिहासिक कालके समीप आते जाते हैं त्यों २ जैनधर्मके उद्धारकोंका परिचय अनेक प्रमाणोंसे सिद्ध होने लगता है। बाइसवें तीर्थंकर नेमिनाथके विषयकी अनेक घटनाओंका समर्थन हिंदू पुराणोंसे होता है। तेइसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ तो अब ऐतिहासिक व्यक्ति माने ही जाने लगे हैं। इनके जीवनके सम्बन्धमें नागवंशी राजाओंका उल्लेख आता है। इस वंशके विषयपर ऐतिहासिक प्रकाश पड़ना प्रारम्भ हुआ है। चौवीसवें तीर्थंकर महावीरका समय तो जैन इतिहासकी कुंजी

ही है। वैज्ञानिक इतिहासने धीरे २ महावीरकी ऐतिहासिकता स्वीकार क्रमसे पार्श्वनाथ तक जैन धर्मकी शृङ्खला ला जोड़ी है। आश्चर्य नहीं इसी प्रकार वैज्ञानिक शोधसे धीरे२ अन्य तीर्थंकरोंके समयोंपर भी प्रकाश पड़े।

जैन भूगोल।

भारतवर्षका जो भूगोल सम्बंधी परिचय जैन पुराणोंमें दिया है वह भी स्थूल रूपसे आजकलके ज्ञानके अनुकूल ही है। भरतक्षेत्र हिमवत् पर्वतसे दक्षिणकी ओर स्थित है। इसकी दो मुख्य नदियां हैं। गंगा और सिंधु। वे दोनों नदियां हिमवत् पर्वत परके एक ही 'पद्म' नाम सरोवरसे निकलती हैं। गंगा पूर्वकी ओर वहती हुई पूर्वीय समुद्रमें गिरती है और सिन्धु पश्चिमकी ओर वहती हुई पश्चिम समुद्रमें गिरती है। कुलकरों और तीर्थंकरोंका जन्म गंगा और सिन्धुके बीचके प्रदेशोंमें ही हुआ था। यह वर्णन किसी प्रकार गलत नहीं कहा जासक्ता।

प्रस्तुत ग्रंथ।

इस थोड़ेसे विशदीकरणके साथ मैं इस 'संक्षिप्त जैन इतिहास' को सहर्ष पाठकोंके हाथमें देता हूं। यदि इस स्पष्टीकरणको ध्यानमें रखकर पाठक इस पुस्तकको पढ़ेंगे तो मुझे आशा है कि वे इसका इतिहासकी दृष्टिसे आदर करेंगे। लेखकने इसे अच्छे परिश्रमसे लिखा है। लेखककी प्रस्तावना ध्यानपूर्वक पढ़ने योग्य है।

यह जैनियोंके पूर्ववर्ती कालका इतिहास संकलित होगया।

भारी आवश्यक्ता।

अब ऐतिहासिक कालके अर्थात् महावीर स्वामीसे लगाकर अब तकके इतिहास संकलनकी बड़ी भारी आवश्यक्ता है। यह कार्य बड़े ही महत्व पर साथ ही बड़े ही परिश्रमका है। इसके लिये केवल एक व्यक्तिका प्रयास सर्वथा पर्याप्त नहीं है। इस कार्यमें भारतके सभी इतिहासप्रेमियों विशेषतः जैन इतिहासके रुचियोंको पूरा २ योग देना चाहिये। सबसे प्रथम भिन्न २ प्रान्तोंमें भिन्न २ शताब्दियोंमें जैनियोंकी राजनैतिक सामाजिक धार्मिक आदि परिस्थितियोंपर खोजपूर्ण ऐतिहासिक निबन्ध लिखे जाना चाहिये। इसप्रकार जब विषयकी पूरी २ छानबीन होजाय तब ही संतोषप्रद इतिहास संकलित किया जासक्ता है। यदि इतिहास प्रेमियोंने इस ओर ध्यान दिया तो यह कार्य भी शीघ्र ही पूरा हो जायगा।

अमरावती।
किंग एडवर्ड कॉलेज,
१४ जनवरी १९२६

इत्यलंविबुधेषु—
हीरालाल जैन।

प्रस्तावना ।

जैनधर्मकी ऐतिहासिक प्राचीनता ।

जैनधर्म अथवा जैन जातिकी ऐतिहासिक प्राचीनताके विषयमें यदि कोई निश्चयात्मक बात कही जा सक्ती है तो वह यही होगी कि जितनी ही ऐतिहासिकता भारतवर्षके ऐतिहासिक कालकी सिद्ध होती जायगी उतनी ही जैनधर्मकी प्राचीनता प्रगट होगी, कारण कि भारतके प्राचीनकालमें जैनधर्मके अस्तित्वकी प्रधानता रही है। वर्तमानमें जिस प्रकार भारतवर्षका ऐतिहासिक काल ईसासे पूर्व ६००–७०० वर्षसे प्रारम्भ होता है उसी प्रकार जैन इतिहासकी कालगणना समझना चाहिए। यद्यपि एक दृष्टिसे जैन धर्मकी ऐतिहासिक प्रमाणता ईसासे पूर्व ८०० वा ९०० वर्ष तक बढ़ जाती है क्योंकि आधुनिक खोजने जैनियोंके अंतिम तीर्थङ्कर भगवान महावीरके पूर्वागामी २३ वें तीर्थङ्कर श्री भगवान पार्श्वनाथको ऐतिहासिक व्यक्ति करार दिया है; जो भगवान महावीरसे २५० वर्ष पहिले हुए थे। इसीलिए आधुनिक दृष्टिसे एक विशेष विश्वसनीय जैन इतिहास ईसासे पूर्वकी ९ वीं शताब्दिसे प्रारम्भ हुआ कहा जासक्ता है।

उधर भगवान पार्श्वनाथके पूर्वागामी तीर्थङ्कर श्री नेमिनाथजी अर्जुनके मित्र और गीताके श्रीकृष्णके समकालीन थे। और वह भगवान पार्श्वनाथसे ८४,००० वर्ष पहिले हुए कहे जाते हैं।

इनका उल्लेख यजुर्वेद अध्याय ९ मंत्र २९ में है। इनसे भी पूर्वके तीर्थंकरोंका वर्णन वेदों एवं अन्य हिन्दू पुराणोंमें आया है, जैसे भागवतपुराणमें जैनधर्मके इस युगकालीन संस्थापक श्री ऋषभनाथजीको नववां अवतार माना है और १३ वें अवतार वामनका भी उल्लेख वेदोंमें है। इसलिये इन सर्व बातोंसे यह प्रमाणित होता है कि जैनधर्मका अस्तित्व वेदोंके निर्मित होनेके पहिलेसे है। और पाश्चात्य विद्वानोंमें सर्व अन्तिम सम्मति "इन्सायक्लोपेडिया ऑफ रिलीजन एण्ड ईथिक्स" के भाग ७ पृ० ४७२ की से इस विषयकी पुष्टि होती है, क्योंकि वहांपर बतलाया गया है कि कर्मसिद्धान्तमें व्यवहृत आश्रव और संवरका यथार्थ शब्दार्थ जैनधर्मसे इन शब्दोंका प्रगट है एवं अन्य किसी धर्ममें वह अपने असली शब्दार्थमें व्यवहृत नहीं हुए हैं। इसके अतिरिक्त मेजर जेनरल जे० जी० आर० फरलॉन्ग. एफ. आर. एस. ई., एफ. आर. ए. एस., एम. ए. डी. आदि आदिने अपने १७ वर्षके लगातार अन्वेषणके पश्चात् प्रगट किया है कि "ईसासे पहिले २९००से ८०० वर्षतक, बल्कि अज्ञात समयसे, उत्तरीय, पश्चिमीय और उत्तरीय मध्य भारत तूरानियोंके 'जिनको आसानीके लिये द्राविड़ कहा गया है' राज्यशासनमें था, और वहां वृक्ष, सर्प और लिङ्ग पूजाका प्रचार था, किन्तु उस समयमें भी उत्तरीय भारतमें एक प्राचीन और अत्यन्त संगठित धर्मप्रचलित था, जिसका सिद्धान्त, सदाचार और कठिन तपश्चरण उच्च कोटीका था, अर्थात् जैनधर्म जिसमेंसे ब्राह्मण और बौद्धधर्मके पुराने तपस्वियोंके आचार स्पष्टतया उद्धृत किये गये हैं।

(देखो-"Short Studies in the Science of Comparative Religion pp. 243-244.")

फिर प्रो० बील और सर हेनरी रोलिन्सन प्रमाणित करते हैं कि म० बुद्धके द्वारा बौद्धधर्मकी उत्पत्ति होनेके बहुत पहिले मध्य ऐशियामें एक ऐसा धर्म प्रचलित था जो बौद्धधर्मसे मिलता जुलता था। जैनधर्मकी बौद्धधर्मसे सदृश्यता सर्व प्रकट ही है। इसलिए यह धर्म जैनधर्म होना संभवित है।

इसके अतिरिक्त यदि हिंदू शास्त्रोंका और अध्ययन किया जाय तो उनसे बराबर जैनधर्मके अस्तित्वका पता चलता है। शारीरिक मीमांसा व महाभारतके कर्त्ता ऋषि व्यास अथवा बादरायन जैनियोंकी आलोचना २रे अध्यायके २रे पदमें ३३-३६ सूत्रों द्वारा करते हैं। इसपर टीका करते हुए नीलकंठ कहते हैं कि "सर्वं संशयतिमितिस्यादवादिनः सप्तभंगी नयज्ञाः" (श्लो० २ अ० ४९) और यह प्रकट ही है कि सप्तभंगी जैनधर्मका मुख्य सिद्धांत है। इस हेतु स्याद्वादियोंसे भाव जैनियोंसे है जैसे कि मि० बार्थ अपनी पुस्तक Religions of India P. 148 पर और अमरकोष एक क्षेपक श्लोक द्वारा स्वीकार करते हैं।

महाभारतके आदि पर्व अ० ३ श्लोक २६-२७में भी जैन मुनियोंका उल्लेख 'नग्नक्षपणक' के रूपमें है। अद्वैत ब्रह्मसिद्धि नामक हिंदू ग्रन्थके कर्ता क्षपणकके अर्थ जैन मुनि करते हैं। यथा "क्षपणका जैनमार्गसिद्धांतप्रवर्तका इति केचित् (पृष्ठ १६९ Cal: ed:)। फिर महाभारतके शांतिपर्व, मोक्षधर्म अ० २३९ श्लो० ६में सप्तभंगी नयका उल्लेख आया है। साथ ही शांतिपर्व

मोक्षधर्म अध्याय २६३ पर नीलकंठ टीकामें ऋषभदेवके पवित्रा-चरणके प्रभावका उल्लेख आर्हतों वा जैनोंपर पड़ा बतलाते हैं। ऋषभदेवका उल्लेख वाचस्पत्यमें "जिनदेव"के नामसे और शब्दार्थ चिन्तामणिमें आदिजिनदेवके रूपमें है। इस सबसे प्रकट है कि महाभारतके समयमें भी जैनधर्मका अस्तित्व था।

महाभारतसे पहिले रामायण कालमें भी जैनधर्मकी विद्यमानता प्रमाणित होती है। योगवशिष्टके वैराग्य प्रकरणमें रामचंद्रजी कहते हैं:—

"नाहं रामो न मो वांछा भावेषु न च मे मनः।
शांत आसितुमिच्छामि स्वात्मनीज्ञिनो यथा।" अ० १९ श्लो० ८

रामायणमें बालकण्ड (सर्ग १४ श्लो० २२) के मध्य राजा दशरथका श्रमणोंको आहार देनेका उल्लेख है। अर्थात् "तापसा भुञ्जते चापि श्रमणा भुञ्जते तथा।" श्रमण शब्दका अर्थ भूषण टीकामें दिगम्बर साधु किया गया है। "श्रमणा दिगम्बराः श्रमणा-वातवसनाः" * जैनशास्त्रोंमें तो राजा दशरथ और महाराज रामचन्द्रको जैनधर्मानुयायी लिखा है, अतएव उस प्राचीन समयमें भी जैनधर्मकी विद्यमानता प्रकट होती है।

तिसपर शाकटायनके अनादिसूत्रमें "इण् सिञ् जिदीङुष्य-व्यियोनक्" सूत्र २८९ पाद ३ है। इसका अर्थ सिद्धांत कौमुदीके कर्ताने 'जिनोर्हन' किया है। जिसका भाव जैनधर्मके संस्थापकसे है, क्योंकि हिंदू धर्मके ग्रंथोंमें जैनधर्मके संस्थापकका उल्लेख सर्वत्र 'जिन' व 'अर्हन्' किया गया है। यह शाकटायन निरुक्तके

*See The Jain Itihas Series. Pt I. pp. 10-13.

कर्त्ता यस्कके पहिले हुए थे। और यस्क पाणिनीसे कितनीक शताब्दियां पहिले हुए, जो महाभाष्यके कर्त्ता पाताञ्जलिके पहिले विद्यमान थे। अब पाताञ्जलिको कोई तो ईसासे पूर्व २ री शताब्दिका बताते हैं + और कोई ईसासे पूर्व ८ वीं या वीसवीं शताब्दीमें हुआ बतलाते हैं, १ किंतु हम देखते हैं कि शाकटायनका उल्लेख ऋग्वेद और शुक्लजुर्वेदकी प्रतिसाख्योंमें और यस्कसे निरुक्तमें है। इस प्रकार ऋग्वेदादिके समयमें शाकटायन विद्यमान थे, यह प्रमाणित होता है। तिसपर यह व्याकरणके उद्भट विद्वान् जैन धर्मानुयायी थे, यह भी आधुनिक खोज द्वारा प्रमाणित हुआ है। २ इसलिए मानना होगा कि जैनधर्मका अस्तित्व शाकटायनके समयमें अथवा उससे पहिले भी था अर्थात् ईसासे २००० वर्ष पहिले भी जैनधर्म प्रचलित था।

बौद्धोंके शास्त्रोंमें भी जैनियोंका उल्लेख "निग्गन्थ" रूपमें हुआ है। ईसासे पूर्व ७ वीं शताब्दिमें प्रचलित बौद्धजातक कथाओंमें "घटकथा"में नग्न जैनमुनिका उल्लेख है। इसी तरह मज्झिमनिकाय आदि ग्रन्थोंमें है। The Dialoghies of Buddha नामक पुस्तकमें म० बुद्धके समयमें प्रचलित विविध मतोंके साधुओंके चारित्र-क्रियायोंका उल्लेख है। उनमें एकमें दिगम्बर जैन मुनियोंकी क्रियायें दी हुई हैं। ऐसी अवस्थामें इस तरह भी उस समय अर्थात् म० बुद्धसे पहले जैनधर्मका अस्तित्व प्रमाणित होता है। फिर जहां बौद्ध ग्रन्थोंमें उस समयके अन्यमतोंका उल्लेख किया है,

---

+ Ibid. 14. 1. See History & Literature of Jainism, pp. 10. 2. Ibid. P. 10.

वहां आजीवकोंके बाद ही निगन्थों (जैनियों) को गिनाया है। यदि उस समय ही जैनधर्मकी उत्पत्ति हुई होती तो उसकी गणना इस प्रकार नहीं की जाती, अतएव बौद्ध शास्त्रोंसे भी जैनधर्मका अस्तित्व म० बुद्धसे पहलेका प्रमाणित होता है, जैसा हिन्दू शास्त्रोंसे प्रगट है।

इस प्रकार जैनधर्मकी ऐतिहासिक प्राचीनता ईसाके पहिले २००० से ८०० वर्ष तक प्रकट होती है। प्राच्य विद्यामहार्णवोंकी महत्व पूर्ण खोजसे आगामी इस विषयपर और भी प्रकाश पड़नेकी संभावना है।

ऐतिहासिक कालके पहिले जैनधर्म।

ऐतिहासिक कालके पहिले जैनधर्मके अस्तित्वका जब हम विचार करते हैं तो हमको उसके सिद्धांत की ओर दृष्टिपात करना पड़ता है। जैन धर्मके सिद्धान्तका दिग्दर्शन करनेसे हमें उसका वैज्ञानिक ढङ्ग प्रगट होजाता है और हमें ज्ञात होजाता है कि उसके सिद्धान्त वैज्ञानिक सत्य हैं।* सत्य अनादि निधन है और स्वयं प्रमाणित है। इसलिए जैनधर्म अनादिनिधन है और स्वयं प्रमाणभूत सर्वज्ञ वाक्य है। वह अनादिकालसे अपने इसी अखण्ड एवं पूर्ण रूपमें है। इसलिए जैनियोंकी दृष्टिसे स्वयं भारतवर्षके इतिहासके प्रारम्भ होनेका समय इतना प्राचीन है कि उसकी गणना गिनतीके अक्षरोंमें नहीं की जासक्ती!

* इस व्याख्याकी यथार्थताके लिए मि० चम्पतरायजी जैन वारिष्टरकी Key of Knowledge, असहमतसङ्गम आदि एवं जैन आर्ष ग्रन्थोंका अवलोकन करना चाहिए।

तिसपर हिन्दुओंके प्रमाणिक ग्रन्थ वेद 'जिनके विषयमें हम पहिले भी किंचित् लिख चुके हैं' ऐतिहासिक कालसे पहिलेके बने हुए कहे जाते हैं। आधुनिक खोजने उनको १५००-४००० वर्ष ईसाके पूर्वका संकलित बतलाया है और जतलाया है कि यह ऐतिहासिक कालके पहिलेके वृतान्तोंको जाननेके लिए अतीव मूल्यवान और आवश्यक हैं। और हम पहिले देख चुके हैं कि जैनधर्मके इस युगकालीन संस्थापक श्री ऋषभनाथजी वेदोंके बननेसे बहुत पहिले अवतीर्ण हुए थे। इसलिए इस तरह भी जैन धर्मकी प्राचीनता सर्व प्राचीन प्रमाणित होती है और भारतवर्षमें जैनधर्मकी सर्वोपरि प्रधानता प्रकट होजाती है। इस विषयमें जैन दृष्टिसे वर्णन हम अगाड़ी करेंगे।

इसके अतिरिक्त इस विषयकी पुष्टि इस प्रकार भी होती है। प्रख्यात जैन फिलासफर मि० चम्पतरायजी जैनने अपने 'असहमत संगम' में संसारमें प्रचलित समस्त प्राचीन धर्मोंके सैद्धांतिक तत्वोंमें जैन सिद्धान्तका प्रभाव प्रमाणित किया है। इसलिए प्रगट है कि संसारकी समस्त जातियोंने जैन तत्त्वज्ञानसे बहुत कुछ सीखा था। उनके तत्त्वोंका जैनधर्मसे सादृश्य होना उक्त व्याख्यामें अतिशयोक्ति प्रमाणित नहीं करता।

तिसपर जैनधर्मके कतिपय सिद्धांत ही उसकी प्राचीनता प्रगट करते हैं जैसे (१) जैनधर्ममें वनस्पति, पृथ्वी, जल, अग्नि आदि पदार्थोंमें भी जीवित शक्तिका होना बतलाया गया है। Enthology विद्याका मत इस सिद्धांतके विषयमें है कि वह सर्व प्राचीन मनु-

ष्योंका सिद्धान्त है । (२) जैन सिद्धांतमें तत्त्वों वा द्रव्योंका वर्णन करते समय गुणोंका पृथक् विवेचन नहीं किया गया अर्थात गुणोंको स्वयं एक तत्त्व वा द्रव्य नहीं माना है । इससे प्रगट है कि जैन धर्मकी उत्पत्ति वैशेषिक दर्शनसे बहुत प्राचीन है, जिसमें पदार्थों और उनके गुणोंमें भेद किया है । (३) और जैनधर्ममें आदर्श पूजा स्वीकृत है । जैनी उन महान् पुरुषोंकी पूजा करते हैं जो सर्वोत्कृष्ट, सर्वज्ञ, सर्व हितैषी थे । इस प्रकारकी पूजा प्राचीन मनुष्योंमें ही प्रचलित थी । (See Carlyle in Heroes & Hero worship.) तिसपर मि० ई० टामस साहब अपनी Early Faith of Asoka नामकी पुस्तकमें लिखते हैं कि "जो धर्म अत्यन्त सरल होगा वह उससे अधिक जटिल धर्मसे प्राचीन समझा जायगा।" फिर मेजर जनरल फरलॉना साहब जैनधर्मका पूर्ण अध्ययन करके कहते हैं कि "जैनधर्मसे सरल–पूजामें, व्यवहारमें और सिद्धांतमें–और कौनसा धर्म होसक्ता है ?" इसलिए इस प्रकार भी जैनधर्मकी प्राचीनता सिद्ध होती है । और हमको कहना होगा कि जैनधर्म और जैन जाति सर्व प्राचीन होनेका दावा कर सक्ते हैं । एवं जैन दृष्टिसे इतिहासका विकाश एक अज्ञात समयसे प्रारम्भ होता है ।*

---

* जब जैनधर्मका अस्तित्व हिंदुओंके वेदोंसे भी प्राचनि प्रमाणित है तब उसे बौद्धधर्मसे निकला हुआ समझना नितान्त मिथ्या है । इस विषयका विशेष विवरण वर्तमान लेखककी " भगवान महावीर " नामक पुस्तकमें देखना चाहिए ।

आधुनिक विद्वानोंका मत है कि पहले भारतवर्षमें अनार्य लोग बसते थे एवं आर्य भारतवर्षके मूलनिवासी नहीं हैं। वे भारतवर्षमें उत्तर पश्चिमी दर्रोंसे ऐतिहासिक कालके बहुत पहिले प्रविष्ट हुए थे। कहा जाता है कि यूरोपकी प्रायः सभी जातियां और एशियामें भारतीय तथा ईरानी ये सब इसी वंशकी हैं। यूरोपीय माता पितासे उत्पन्न अमेरीकन भी इसी जातिसे हैं।

क्या जैनी भारतके मूल निवासी हैं?

यद्यपि 'वास्तवमें प्राचीन आर्योंकी मूल जन्मभूमि कहां थी, वे लोग कब वहांसे चले और किस किस देशमें कब कब जाकर बसे' इस विषयमें अन्वेषकोंका विभिन्न मत है, परन्तु विशेष प्रमाणोंके होते हुए यह युक्तिसंगत प्रतीत होता है कि आर्योंका मूलस्थान भारतवर्ष ही था, जैसा कि विश्वकोषके भाग २ पृष्ठ ६८९ पर प्रमाणित किया गया है और कहा गया है कि "ऋक्संहिताके अनुप्रत्नस्योकसो हुवे." (१।३०।९) प्रमाणपर यूरोपीय पुरातत्वविद् सारस्वत आर्योंके आदि पुरुषोंका पूर्ववास एशिया खण्डके मध्यभाग स्थित वेलुर्ताग और मुशतागकी पश्चिम पार्श्वगत अधित्यका भूमि बताते हैं। किन्तु वस्तुतः पहिले आर्यावास सप्तसिंधु प्रदेश रहा।....गङ्गा, यमुना, सरस्वती, शुतुद्री (शतद्रु), परुष्णी (इरावती), असिन्की (चन्द्रभागा), एवं वितस्ता, इन्हींमें इरावती, चन्द्रभागा और वितस्ता इन तीनोंके संमिलनसे सम्भूत मरुद्वृधा, शतद्रुके पश्चिम पार्श्वसे संगत प्राचीनतम आर्जीकीया (उरुञ्जिरा वा विपाट् जो इस समय विपाशा नामसे प्रख्यात है) और

तक्षशिला नामक प्रदेशसे निम्नगामी सिन्धुसंगत सुषोभा सात नदी जिस भूभागमें बहती, उसकी संज्ञा सप्तनद वा सप्तसिंधु है.... वर्णित सप्तनद प्रदेश सिंधुके पूर्वपार पड़ता है। सिंधुके पश्चिमपार भी अपर सप्तनद प्रदेश विद्यमान है। आजकल यह आर्यावर्त (भारत) से अलग होते भी पहिले उसके अन्तर्गत रहा।" इसी विषयमें मि० नारायण भवनराव पावगीने अपनी "आर्यन क्रेडल इन दी सप्त सिंधूज" नामक पुस्तकमें लिखा है कि "आर्य जातियां विदेशोंसे न आकर यहीं सरस्वती नदी आदिके पास उत्पन्न हुई और इसे लाख पचास हजार वर्षसे कम नहीं हुए।"

अतः यह प्रगट है कि आर्योंका मूल निवास भारतवर्ष था, और वे यहींसे जाकर अन्य विदेशोंमें वसे थे। इसलिए जैन दृष्टिसे वर्तमानके यूरोपादि छहों द्वीपोंको आर्यावर्त (आर्यखण्ड) के अंतर्गत मानना यथार्थ प्रगट होता है। इस व्याख्याकी पुष्टि विविध देशोंके मान्य ग्रन्थोंमें "आर्य" शब्दका उल्लेख मिलनेसे भी होती है। जैसे पारसियोंके अवस्था नामक ग्रंथमें 'ऐर्य' शब्द व्यवहृत हुआ है जिसके अर्थ अर्य और आर्य प्रगट किये गये हैं। यूनानीं लोगोंने भी आर्य देशका उल्लेख किया है। एवं यूरोपकी करीब२ सब ही भाषाओंमें हल वा कृषि वाचक शब्द अर् धातुसे निकलते हैं जिस 'अर्' धातुसे पाश्चात्य पंडित संस्कृतका अर्य (आर्य) शब्द बना प्रगट करते हैं।

अब जब कि हम आर्य्योंको भारतवर्षका मूल निवासी पाते हैं तब जैनियोंको भी भारतवर्षका आदि निवासी मानना यथार्थ है, क्योंकि जैनी जिस दर्शनके उपासक हैं वह आर्य दर्शन है।

जैन धर्मको आर्यदर्शन प्रमाणित करनेमें स्वयं हिंदू शास्त्र प्रमाणभूत हैं। उपनिषिधोंमें एक दृश्य वर्णित है कि ब्राह्मण वंशज नारद क्षत्री नृप सनतकुमारके दरबारमें आत्मविद्यामें सिद्धहस्त होनेकी जिज्ञासासे गए थे।

जैन दर्शन आर्य्य दर्शन है और जैनी आर्य्य हैं।

वहां नारदने कहा कि "यद्यपि मैं वैदिक शास्त्रोंमें पाराङ्गत हूं परन्तु मैं अभी अपने ज्ञानको अपरिपूर्ण समझता हूं" क्योंकि कुरुपाञ्चाल आर्योंकी अपर विद्या वा वैदिक ज्ञान विभिन्न पूर्वी आर्योंकी आत्मविद्या वा पर-विद्यासे मैं नितान्त अनभिज्ञ हूं।" आत्मविद्यामें वैदिक यज्ञकाण्डका निषेध है जो केवल निरर्थक ही नहीं बल्कि जीवकी आत्मोन्नतिमें बाधक है। ब्राह्मण शास्त्रोंमें वह विषय मनोरञ्जक है, जहां याज्ञवल्क्य गंगाकी तराईमें रहनेवाले मनुष्यों वा पूर्वीय आर्योंको जो बहुतायतसे काशी, कौशल, विदेह और मगधमें रहते थे 'भृष्ट' संज्ञासे विभूषित करता है। भ्रष्टसे मतलब रुष्ट हुए लोग अथवा सुधारक होते हैं। इसलिए अन्ततः वह 'भ्रष्ट' लोग आर्य थे। भला याज्ञवल्क्यने इन पूर्वी आर्योंको भृष्ट क्यों कहा? इसका कारण ढूंढनेमें विशेष अनुसंधान करनेकी आवश्यक्ता नहीं! गङ्ग प्रदेशोंके रहाकू अथवा काशी, मगधादिके निवासी पूर्वी आर्योंने अनोखी सामाजिक रीतियोंका प्रचार किया था। उन्होंने केवल वेद वर्णित यज्ञोंका ही निषेध नहीं किया था बल्कि कहा था कि उनका करना पापका कारण है और न करना पुण्यका भाजन है। इस प्रकार उन्होंने एक ही दृष्टिसे लाभ नहीं उठाया बल्कि उनका विरोध करके मत भिन्नताको पूर्ण प्रकट कर दिया।

अतः यह विशेषतया स्वीकार किया जासक्ता है कि ये पूर्वी आर्य जिन्होंने वैदिक क्रियाकाण्डका निषेध किया था और आत्माकी प्रधानताका प्रचार किया था वे जैन ही थे। इस व्याख्याकी पुष्टि भाषाओंके इतिहाससे भी होती है, क्योंकि उससे जाना जाता है कि पहिलेके आर्य लोग और मुख्यतः उनमें वह क्षत्री जो काशी, कौशल, मगध और विदेहके निवासी थे, एक प्रकारकी प्राकृत भाषा वोलते थे, जिसके कारण कुरु पाञ्चालके आर्योंने उनकी आर्य भाषाके कल्पित दूषित उच्चारणके कारण उपेक्षा की थी। और जब कि यह पूर्णतया मानी हुई बात है कि जैनियोंके प्राचीन ग्रन्थ केवल प्राकृतमें ही लिखे जाते थे, तब प्राकृतिक दृष्टिसे भी यह स्वीकार किया जासक्ता है कि काशी, कौशल, विदेह और मगधके निवासी पहिलेके आर्य जैन थे। इस प्रकार जैनी और उनका धर्म आर्य प्रमाणित होते हैं। इसलिए जैनी भारतवर्षके मूल निवासी आर्य हैं। प्रो० ए० चक्रवर्त्ती एम० ए० इस ओर विशेष अनुसंधान कर रहे हैं। उन्हींके एक लेखसे यहां यह वर्णन किया गया है।

क्या पूर्वी आर्य्य म्लेच्छ और प्राचीन आर्य्यों-मेंसे निकले थे?

हिन्दू शास्त्रोंमें पूर्वी आर्यों अर्थात् जैनियोंको भृष्टम्लेच्छ कहा है तो क्या वह वास्तवमें म्लेच्छ थे? परन्तु इस प्रश्नकी असार्थकता पूर्वोक्त कथनसे ही प्रत्यक्ष है और यह साफ प्रगट है कि वेद विपरीत विचारोंका प्रचार करनेसे उनका ऐसे शब्दद्वारा उल्लेख किया गया है, यद्यपि वास्तवमें वह आर्य थे। इसके अतिरिक्त उनमें पूर्वी आर्योंका म्लेच्छ कहना स्वयं हिंदुओंकी 'स्मृति' के निम्न श्लोकसे वाधित है—

चातुर्वर्ण्यव्यवस्थानं यस्मिन्देशे न विद्यते ।
म्लेच्छदेश स विज्ञेयः आर्यावर्तस्ततः परम् ॥

अर्थात् जिस देशमें चारों वर्णोंके वर्णगत आश्रमधर्मकी व्यवस्था नहीं, वही स्थान म्लेच्छ देश होता है। आर्यावर्त उससे भिन्न है। जैनियोंमें वर्णव्यवस्था उनके प्रथम तीर्थंकर हिंदुओंके माने हुये नवें अवतार श्री ऋषभदेवके जीवनकालसे अथवा पूर्णरूपमें भारतवर्षके प्रथम सार्वभौम अधिपति–पौराणिक चक्रवर्ती भरत 'जिनके नामपर हिन्दुस्तान भारतवर्ष कहलाता है' के जमानेसे प्रचलित है और पूर्वी आर्य जैनी थे, यह हम देख चुके हैं। इसलिए पूर्वी आर्य्य म्लेच्छ नहीं थे और न वह प्राचीन आर्य्योंमेंसे रुष्ट होकर निकले थे। कुरुपाञ्चालके आर्य्योंद्वारा प्रचारित हिंसापूर्ण यज्ञकाण्ड वास्तवमें वेदोंमें नहीं था। क्योंकि वेदोंमें हिंसा वृत्तिका विधान नहीं होसक्ता, जो उसके मांसभक्षी एवं राक्षसोंके श्राप सम्बंधी वाक्यों आदिसे प्रगट है इसलिए वेदोंकी वास्तविक शुचितामें यह घृणोत्पादक विषय पश्चात् किसी दुर्समयमें वढ़ा दिया गया था।

वेदोंमें यज्ञविषय पहिले नहीं था वह पीछेसे वढ़ा दिया गया था। उनका सामान्य दिग्दर्शन।

यह यज्ञ विषयक विषय वेदोंमें कब वढ़ा दिया गया, इसके उत्तरके लिए हम वेदोंका सामान्य दिग्दर्शन करेंगे। हिन्दू वेदोंको ईश्वरकृत वतलाते हैं परन्तु मंत्रोंका ही संगठन इस व्याख्याको निर्मूल कर देता है। यथार्थ ईश्वरीय वाणीकी उत्पत्ति दो प्रकारसे कही जाती है अर्थात् (१) आत्माके निजगुण केवलज्ञान द्वारा अथवा (२) किसी तीर्थंकरके निर्वाण प्राप्तिके पहिले सदुपदेश द्वारा।

वेद दूसरे प्रकारके बतलाए जाते हैं क्योंकि उनको श्रुति कहा गया है। इस सम्बन्धमें यह बात ध्यानमें रखना चाहिए कि वाणी चाहे कुछ और कैसी भी क्यों न हो एक पौद्गलिक क्रिया है और उसकी उत्पत्ति मानसिक वृत्तियों द्वारा पौद्गलिक अणुओंसे होती है। तब वह शब्द पौद्गलिक अणुओंसे वेष्टित आकाशमें होकर श्रोताके कर्णगोचर होता है। मनोवृत्ति, जिससे उसकी उत्पत्ति है अणुओंसे परिपूर्ण है। और उसके विना उसकी उत्पत्ति ही नहीं होसक्ती। अतएव जब पुद्गलके अंश नहीं रहेंगे तब वाणीकी उत्पत्तिका होना असम्भव है। और इससे यह भी प्रभाषित होगया कि परमात्मावस्थामें जीव मनुष्यों द्वारा बातचीत नहीं कर सक्ता है। इसके अतिरिक्त जब कर्मोंसे पूर्ण छुटकारा पाना अर्थात् मुक्ति पाना आत्माको स्वतः ही ध्यान करनेसे मिलता है तब कोई भी आत्मा, परमात्मावस्थामें दूसरोंसे बातचीत करनेकी इच्छुक नहीं होगी। अतः यह पूर्णतया सिद्ध होगया कि शुद्धावस्थाकी आत्मा अथवा परमात्मा द्वारा वाणी मनुष्यों तक नहीं पहुंचाई जासक्ती। इसलिए वेद ईश्वरकृत नहीं है।* सुतरां वे विविध ऋषि कवियोंकी रचनाएं हैं। इन ऋषियोंने उनसे उनके मंत्रोंको कवितामें प्रकट करके अपनी आत्माको उसके गुणगाकर मोहित कर लेना ही आशय रक्खा था। वेद मंत्रोंमें प्राकृतिक शक्तियों-सूर्य, अग्नि, आदि-की उपासना नहीं है, बल्कि आत्माके विविध गुणोंका वर्णन

---

* इस विषयका पूर्ण विवरण मि० चम्पतराय जैनकी Practical Path नामक पुस्तकमें देखना चाहिए; जिसके अनुसार यहांपर चरचा की जारही है।

है। वैदिक कालकी उच्च सभ्यताका ध्यान रखते हुए यह कभी भी स्वीकार नहीं किया जासक्ता कि वेदोंके रचयिता ऋषिगण इतने अज्ञानी थे कि वे प्राकृतिक शक्तियोंसे डर जाते और उनकी उपासना करते ! वास्तवमें उन शाकभोजी ऋषियोंने वेद मंत्रोंमें आत्माके गुणोंका अलंकृतरूपमें गुणगान किया है। उनकी यही अलंकृत शब्द रचना कुछ कालके पश्चात् दैवीवाणी समझी जाने लगी और एक नए धर्मकी उत्पत्ति होगई, ज्योंही वेदोंके यथार्थ भावोंको मनुष्योंने भुला दिया। सबसे प्राचीन मंत्र ऋग्वेदके यज्ञ विषयके अतिरिक्त हैं; और उनका यथार्थ भाव उस समय बहुत मनुष्योंको विदित था। एवं वे मन्त्र साहित्य दृष्टिसे ही सुन्दर और मनोरञ्जक नहीं थे किन्तु वे मनुष्यको आत्मज्ञान प्राप्त कराने में भी सहायक थे। इसी कारण उस समयके मनुष्योंको यह कण्ठस्थ थे; सुतरां वे ऋषियोंके लिए ध्यानकी एक सामिग्री थे। उनकी पवित्रता मान्यता दिनोंदिन बढ़ती ही गई और समयके दीर्घ प्रभावसे उनकी दैवीवाणीके रूपमें मान्यता होने लगी। और कुछ उनके भक्तोंने उन्हें विस्मयपूर्ण कृत्योंसे परिपूर्ण प्रगट कर दिया। इस प्रकार आधुनिक मनुष्योंने उनको विशेष मान्य समझा, यद्यपि वे उनके यथार्थ भावसे अनभिज्ञ थे और वे उन्हें अपने मतका दैवी शास्त्र समझने लगे। जब वेद दैवीवाणी माने जाने लगे तब उनमें समय समयपर उनके भक्तों द्वारा न्यूनाधिक परिवर्तन कर दिये गये।

प्रथमावस्थामें जो उनमें एक अधिक परिवर्तन किया गया वह एक दुष्कालके प्रभावसे किया गया था, कारण कि जिनका बलि-

दान किया जाता उनको तो दुख होता ही है परन्तु वह यज्ञकर्त्ता और उसके सहायक सब हीको दुःखदायक ही था और अंतमें हम देखते हैं कि वेदकी यथार्थ पवित्रतामें भी बट्टा लगा था।

महाभारतके शांति पर्वके ३३७ वें अध्यायमें 'राजा वसुने एक अश्वमेध भिषजोंका किया था' यह वर्णन है। इससे प्रकट है कि पहिले पशु यज्ञमें नहीं होमे जाते थे। पशु यज्ञकी उत्पत्ति जिस प्रकार जैनपुराणमें राजा वसु द्वारा हुई वतलाई गई है वैसे ही उक्त पर्वके ३३९ वें अध्यायमे राजा वसुको ही उसका प्रतिपादक बतलाया गया है। यह अधिक परिवर्तन जैन पुराणोंके अनुसार निम्न प्रकार हुआ था। -

काल विशेष हुआ कि राजा वसुके राज्यमें नारद और उनके शिष्य परवतमें अज शब्दपर विवाद हुआ। अज शब्दका अर्थ (१) तीन वर्ष पुराने न उगने योग्य चांवलोंका है और (२) अज नाम बकरेका भी है। परवत, जिसे मांस भोजनका विलास था, अज शब्दका बकरा अर्थ लगाता था और नारद वह उत्पाद शक्ति रहित धान बतलाता था। परवतकी पराजय सर्व जनताके समक्षमें सर्व सम्मत्यानुसार हुई। तब उसने राजासे प्रार्थना की। राजा परवतके पिताका शिष्य था। राजाको परवतके पक्षमें लानेको उसकी मां राजासे एकांतमें मिली और अपने पतिकी गुरुदक्षिणाके रूपमें एक वचन मांगा। वसु राजी हो गए और अपना वचन देदिया। परवतकी मांने परवतके अर्थकी पुष्टि करनेकी याचना की। तब वसुने बहुत पश्चात्ताप किया, परन्तु उसकी माता अपने विषयपर अटल थी। दूसरे दिन वह विषय राजाके सम्मुख उपस्थित किया

गया जिसने परवतके बचनकी पुष्टि की। इस कारण वसुका सर्व नाश हुआ व परवत राज्यसे निकाल दिया गया, परन्तु वह अपने मतके प्रचार करनेमें प्रयत्नशील रहा। जब वह अपने मतके प्रचारके मार्गका विचार कर रहा था तब उसे एक पटलवासी देव ब्राह्मणके रूपमें मिला और यह देव जिसने अपनेको शांडल्य ऋषि वतलाया था, अपने एक पूर्वभवमें मधुपिंगल नामक राजा था। जिसकी भावी स्त्री किसी शत्रुद्वारा न मिलने पाई थी। उस कन्याकी माताने मधुपिंगलको अपनी पुत्री अर्पण करनेका संकल्प किया था, इस कारण मधुपिंगलको उस सुलसा नामक कन्यासे वरमाला प्राप्त करनेमें कोई शङ्का नहीं थी। इसके शत्रु सागरको यह भेद मालूम होगया और सुलसाके रूपलावण्यपर आसक्त हो उसने मंत्रीसे इस विषयमें सम्मति ली। इस दुष्ट मंत्रीने एक झूंठा सामुद्रिक शास्त्र बनाकर चुपकेसे स्वयंवर स्थानमें गाढ़ दिया। और जब सब राजा स्वयंवरके दिन इकट्ठे हुए, तब उसने उस सामुद्रिक शास्त्रको दैवीकृत्यके रूपमें प्रकट किया। फिर वह वाहर निकाला गया और पढ़ा गया। मधुपिंगल विषयक वाक्योंको खूब ज़ोर देकर पढ़ा यह दर्शाते हुए कि मधुपिंगलकी आंखें दुर्भाग्य सूचक उसको और उसके कुटुंबियोंके लिये हैं। इस प्रकार मधुपिंगलने अपना अपमान जानकर अपने कपड़े उतार कर फेंक दिये और साधु रूपमें रहने लगा। उधर सुलसाने सागरके गलेमें वरमाला डाली। इसके कुछ काल पश्चात् मधुपिंगलको सब सच्चा हाल किसी ज्योतिषी द्वारा ज्ञात होगया। जिसके कारण वह क्रोधको प्राप्त हुआ और उसी अवस्थामें उसकी मृत्यु होगई। और मरकर वह पटलवासी देव हुआ।

अवधिज्ञान द्वारा सारा हाल मालूम कर वह अपने पूर्वभवके शत्रु सागरसे अपना वैर चुकानेमें प्रयत्नशील हुआ और तत्काल ही इस मध्यलोकमें आया और परवतको अपने देशसे निकाला हुआ स्वमत प्रचार हेतु मार्गका विचार करते हुए पाया। परवतको अपना बदला लेनेमें सहायक जान वह उसके इस दुष्टतम कार्यमें योग देने लगा। इसीके अनुसार परवत राजा सागरकी पुरीमें गया। वहां इस देव–जिसका नाम महाकाल था–ने अनेक प्रकारके मरी रोग फैला दिए और एक रोगके शांत होनेपर अन्य प्रकारका फैला देता था। इससे वहांके मनुष्योंको विश्वास होगया कि यह दैवी प्रकोप है और परवतकी सम्मत्यानुसार पशुयज्ञ करना ही निश्चित किया गया।

प्रथम तो वे लोग बहुत भड़के परंतु रोगके प्रकोप और परवतके अनेकों विस्मयोत्पादक कृत्योंने उन्हें ऐसा करनेको बाध्य किया। प्रथम केवल मांस ही अर्पण किया गया और उससे लाभ भी मालूम हुआ। जिस बातका प्रचार परवत न्यायकी तलवारसे न कर सका, उसीको एक देवकी सहायतासे पूर्णरूपमें प्रचार करने लगा। धीरे२ बहुतसे मनुष्य उसके मतानुयायी होगए और अंतमें एक अजमेघ यज्ञ–परवतके कथनानुसार कि जिस जीवका बलिदान किया जाता है उसको दुःख नहीं होता किन्तु वह स्वर्गको प्राप्त होता है–कराया गया। यहां भी ज्यों ही बकरेकी बलि चढ़ाई गई त्यों ही महाकालकी सहायतासे एक मायावी विमानमें एक बकरा बैठा हुआ स्वर्गको जाता हुआ दिखाई पड़ा, जिससे सागरके समस्त राज्यको अटल विश्वास होगया।

अजमेधके पश्चात् गोमेध किया गया, फिर अश्वमेघ और अंतमें प्रभावना पूर्ण नरमेध किया गया। प्रत्येक अवस्थामें बलि-दान किया हुआ पशु वा मनुष्य विमाना रोहित स्वर्गकी ओर जाता दिखाई पड़ा। जैसे २ समय वीतता गया वैसे २ इसके प्रतिकारक मनुष्योंका अभाव होगया और अंतमें यज्ञ स्वर्गका द्वार ही माना जाने लगा।

उस समयके निर्मापित यज्ञ विषयक ग्रन्थोंमें उक्त प्रकारका वर्णन भी कर दिया गया था और यज्ञमें मनुष्योंको ऐसा विश्वास होगया कि कितने ही अपनी बलि स्वर्गप्राप्तिकी इच्छासे देनेको तत्पर होगये। अन्तमें सुलसा और सागरने भी अपनेको यज्ञमें बलिरूपमें भस्म कर दिया। इस प्रकार देव महाकालकी इच्छा पूर्ण हुई और वह अपने स्थान पाताललोकको चला गया। इसके साथ ही यज्ञ विषयक झूठे दृश्य और रोगादि भी विदा हो गए। इसी कारणवश उस समय यज्ञके दृश्यमें कुछ फेरफार नहीं दृष्ट पड़ा।

कुछ काल पश्चात् यज्ञाचार्योंके अर्थ विशेष रीतियां पूर्ण रूपमें रची गईं। अनुमानतः उसी ऋग्वेदकालके समय कुछ मंत्रोंका भी परिवर्तन परवतकी कार्य सिद्धिके अर्थ कर दिया गया था और सागरके देशसे वह नूतनमत सर्वत्र प्रचलित होगया। महाकालके चले जानेके उपरान्त भी यज्ञाचार्योंके योगबलके प्रभावसे कितने ही मनुष्य परवतके मतमें मिलते रहे थे।

वेदोंमें गुप्तभाषाका व्यवहार क्यों किया गया ?

वेदोंके* विषयमें उक्त विवरणको पढ़ते हुए यह शङ्का उपस्थित हो जाती है कि वेदके प्रणेता ऋषियोंने उनको अलंकारिक रूपमें क्यों लिखा जो भ्रमोत्पादक है ? इस परदेकी ओटमें होकर अथवा कथानक रूपमें आत्मज्ञान प्रचार करनेसे यही भाव प्रकट होता है कि उसके प्रतिपादक उसको वैज्ञानिक ढङ्गसे प्रतिपादित करनेमें असमर्थ थे। इसलिए यह भी अवश्यम्भावी है कि उन ऋषियोंने यह ज्ञान किसी ऐसे धर्मसे लिया होगा जो उसे वैज्ञानिक ढंगपर वर्णित करता हो।

भारतवर्षमें हिंदू धर्मके अतिरिक्त दूसरे नम्बर पर जैनधर्म (आधुनिक खोजद्वारा) प्राचीन माना गया है, अतएव वैदिक ऋषियोंने अपने ज्ञानका आधार जैनधर्मसे लिया होगा। इसी व्याख्याकी पुष्टि कर्मोंद्वारा आवागमनके सिद्धांतको विचारपूर्वक मनन करनेसे होती है। आवागमनका सिद्धांत वेदोंके कर्त्ताओंको अवश्य विदित था कारण कि ऋग्वेदमें उन्होंने जीवका जल व वनस्पति आदिमें जन्म लेना लिखा है। (See 'Indian myth and legends' by D. A. Mackenjie P. 116.) इसके अतिरिक्त वेदोंके कथानकके गुप्त सैद्धांतिक विज्ञान (Philosophy) से भी इसकी पुष्टि होती है।

---

* जैनियोंकी मान्यता किन वेदोंमें है ? इसका उत्तर आगाड़ी मिलेगा।

वेदोंके विषयमें प्रसंगवश जो उपर्युक्त वर्णन किया गया है, उसमें आर्य्य और अनार्य्योंका उल्लेख आया है। जैनधर्ममें मनुष्य जातिको दो विभागोंमें विभक्त किया गया है; अर्थात् आर्य्य और म्लेच्छ।

आर्य्य और अनार्य्य।

आर्य्य उन मनुष्योंको कहते हैं जो उत्कृष्ट कुलीन और धर्ममें रत रहनेवाले हैं।

म्लेच्छ उन अनार्य्य मनुष्योंको कहते हैं जो असभ्य और नीच होते हैं।

भारतवर्षमें आर्य और म्लेच्छ दोनों ही प्रकारके मनुष्य सदै-वसे हैं। भारतवर्षके मूल रहाकू द्राविड़ जातिके मनुष्य अनार्य और असभ्य कहे जाते हैं, परन्तु हम एक प्रख्यात विद्वान् मेजर जनरल फरलांग साहबकी सम्मति पहिले उद्धृत कर चुके हैं, जिससे प्रकट है कि द्राविड़ जातिके साथ २ उस समय एक विशेष सभ्य समाज भी विद्यमान थी। इस प्रकार जैनधर्मके उक्त कथ-नकी पुष्टि होती है। और यह भी विचारणीय बात है कि द्राविड़ भाषाका जो साहित्य उपलब्ध है, वह आदिरूपमें जैनधर्मका है। अर्थात् जैनियों द्वारा ही द्राविण साहित्यकी जड़ जमाई गई थी। इसलिए समग्र द्राविड़ जातिको असभ्य कहना युक्तियुक्त प्रभाषित नहीं होता।

क्या भारतमें अनार्य्य और असभ्य वसते थे?

आधुनिक विद्वानों द्वारा जो यह कहा गया है कि पहिले भारतमें अनार्य और असभ्य लोग वसते थे, वह संभवतः इस प्रकार होगा। जैन धर्ममें कहा गया है कि बावीसवें तीर्थङ्कर भगवान नेमिनाथके मोक्ष जानेके पश्चात्

भगवान पार्श्वनाथके जन्म होने तक धर्मका मार्ग यद्यपि बिलकुल बन्द तो नहीं हुआ परन्तु उस समयकी प्रजा धर्ममार्गसे इतनी रहित होगई थी कि चारित्र हीनताके कारण वह किन्हीं अंशोंमें असभ्य कही जासक्ती है। अतएव जिस समयके अनुमान हमारे इतिहासकार करते हैं वह समय यही होगा। धर्म मार्गसे रहित होनेके कारण उस समयके मनुष्योंको इतिहासकारोंने अनार्य समझा होगा, परन्तु यह तो किसी तरह भी सिद्ध नहीं होसक्ता है कि जिन लोगोंको ये भारतके आदि निवासी और अनार्य मानते हैं उनसे पहिले भारतमें आर्यत्व था ही नहीं। इसलिये जैन धर्म इस बातके माननेके लिये तैयार नहीं है कि भारतवर्षकी आर्य जातिके इतिहासका प्रारम्भ इसी समयसे हुआ है, किंतु यह समय परिवर्तनका था जिसमें धर्म मार्गका लोपसा हो गया था और मनुष्य प्रायः अधर्म—मार्गकी ओर रुजो होगये थे।*

इसके अतिरिक्त कई विद्वानोंने वेदोंको गौरव दृष्टिसे स्मरण किया है। इतिहासके प्रारम्भ कालमें ही कोई भी ग्रन्थ वेदोंके समान संगठित नहीं हो सक्के और ऐसी अवस्थामें जब कि लोग अनपढ़ बताए जाते हैं, इससे भी मालूम होता है कि न तो इस समयके मनुष्य ही अनपढ़ थे और न वह समय ही आर्य जातिके इतिहासके प्रारम्भका था, किंतु इस समयसे भी क्रोड़ों वर्षों पहिलेसे आर्य जातिका इतिहास चला आता होगा।

आधुनिक विद्वानोंने काले रंगवाले मनुष्योंको अनार्य बतला-

*बा० सूरजमल जैन कृत "जैन इतिहास" भाग प्रथम पृ० १४।

या है परन्तु किसी जातिको रंगमें काले होने हीके कारण अनार्य नहीं कह सके। अतएव द्राविड़ जाति भी केवल इसीलिए अनार्य नहीं कहला सकी और न इसके लिये कोई काफी प्रमाण ही है कि द्राविड़, कोल, मंगोल आदि जंगली जातियोंके सिवाय भारतवर्षमें और कोई सभ्य जाति थी ही नहीं। †

भारतवर्षकी जातियां।

भारतवर्षके प्राचीन समयमें वहांके रहाकू आर्य्योंमें मूलसे चार वर्ण थे और उन हीके अनुसार केवल चार जातियां थीं, परन्तु पश्चात्‌में विदेशी जातियोंके आक्रमणके समयसे उनमें मिश्रण हो गया प्रतीत होता है। आधुनिक इतिहासकारके अनुसार वर्तमान भारतीय जनता जगतकी सभी बड़ी२ जातियोंका मिश्रण है। उसका बड़ा भाग निःसन्देह आर्य वंशसे है। परन्तु उसमें द्राविड़, तातारी तथा अरब जाति और कुछ अंश उस जातिके भी सम्मिलित हैं जिसको नीग्रो या हब्शी कहा जाता है।

उत्तरीय भारतके विशेषतया पञ्जाब, संयुक्त प्रान्त, राजपूताना, गुजरात, बंगाल और बिहारके अधिवासी अधिकतर आर्यवंशके हैं। उत्तर पश्चिममें कुछ अंश अरब और तातारी मूलके हैं। उत्तर पूर्वमें कुछ रक्त मंगोलियन जातिका है। दक्षिणमें अधिकतर भाग द्राविड़ जातिका है और मालावार सागर—तटपर एक विशेष संख्या अरबी वंशके मुसलमानोंकी है। मध्य भारत तथा दक्षिणमें और विन्ध्याचलके भागोंमें और नीलिगिरी पर्वतके प्रदेशमें वे

† पूर्व पृष्ठ १३।

जातियां बसती हैं जिनको भारतकी आदिम निवासी कहा जाता है, जैसे कि भील और गोण्ड आदि । *

भारतकी भाषाएँ ।

प्राचीन समयमें उत्तर भारतकी क्या भाषा थी, इसका सप्रमाणिक उत्तर देना जरा कठिन है, परन्तु जैन धर्मानुसार हम कह सके हैं कि वहांकी भाषा प्राकृत थी, जिसमें जैनियोंके अत्यन्त प्राचीन शास्त्र पूर्व संकलित थे । आधुनिक इतिहासकर उत्तर भारतकी प्राचीन भाषाको निर्धारित करनेमें अपनेको असमर्थ समझता है और वह कहता है कि 'मदरास प्रांतकी भाषायें द्राविड़ श्रोतसे हैं । सम्भव है कि आर्योंके समय उस श्रोतकी भाषायें उत्तरीय भारतमें भी प्रचलित हों, परन्तु यदि ऐसा था तो हिन्दू आर्योंने अपनी भाषाको द्राविड़ श्रोतके शब्दों और मुहावरोंसे अमिश्रित रखनेमें भारी सफलता प्राप्त की ।

आधुनिक द्राविड़ भाषाओंमें संस्कृतके असंख्य शब्द हैं, परन्तु क्या प्राचीन और क्या नूतन संस्कृतनें द्राविड़ भाषाओंके शब्दों और महावरोंकी सूरततक दिखाई नहीं देती । यदि वे होंगे भी तो ऐसे कम कि उनका होना न होना समान है । उत्तरीय और पश्चिमी भारतकी सभी भाषाएँ अर्थात् बङ्गला, हिन्दी, पंजाबी गुजराती और मराठी संस्कृतसे निकली हैं । हां, उर्दूमें अरबी, फारसी और तातारी शब्दों तथा मुहावरोंकी बहुत कुछ मिलावट है, व बोलचालकी उर्दूमें भी सौ पीछे ७५से भी अधिक शब्द निश्चय

* ला० लाजपतरायका "भारतवर्षका इतिहास" भाग १ पृष्ठ २२

पूर्वक संस्कृतके हैं।' † परन्तु हिंदी भाषाके अब तकके इतिहाससे यह प्रमाणित है कि प्राचीन हिंदी भाषा विशेषकर प्राकृतसे मिलती जुलती थी। इसलिए यह मानना युक्तिसंगत प्रतीत होता है कि प्राकृत भाषासे ही संस्कृत और हिन्दी उद्भवित हुई है और उनसे ही अन्य भारतीय भाषाओंकी उत्पत्ति हुई है। तिसपर इस विषयमें मि० विन्सेन्ट स्मिथ साहब लिखते हैं कि:—

"The most important family of Indian languages-the Aryans-comprises all the principal languages of Northern and western India, descended from ancient vernaculars or Prakrits."

(Oxford History of India p. 12.)

भावार्थ-उत्तर पश्चिमीय भारतकी समग्र आर्य भाषाऐं प्राचीन प्राकृत भाषाओंसे उद्भावित हुई हैं।

भारतके धर्म्म।

वर्तमान भारतवर्षमें अनेक धर्म प्रचलित कहे जाते हैं। समझा जाता है कि वहां असंख्य धर्म्म हैं। कितनेक लोग तो यह कहते हैं कि जितने भारतवर्षमें मनुष्य हैं उतने धर्म हैं। "वास्तवमें तो यह अंतिम कथन संसारके सभी अधिवासियोंपर चरितार्थ होता है; क्योंकि धर्म एक व्यक्तिगत लक्षण है जो प्रत्येक मनुष्यके लिये अलग अलग है। धर्मका संबंध मनुष्यकी आत्मासे है। मनुष्योंकी आत्माऐं भिन्न २ हैं इसीलिये किन्हीं दो मनुष्योंका धर्म वास्तवमें एक नहीं है। परन्तु जिन साधारण

† पूर्व पुस्तक भाग १ पृष्ठ २३.

अर्थोंमें "धर्म" शब्दका प्रयोग किया जाता है उनका ध्यान रख-कर यह कहा जा सक्ता है कि भारतमें तीन धर्मोंके अनुयायियोंकी संख्या सबसे अधिक है-(१) हिन्दू (२) इसलाम (३) ईसाई । इनके अतिरिक्त सिक्ख, जैन, बौद्ध और पारसी भी हैं । ये सब आर्य जातिके धर्म हैं । इसलाम और ईसाई दोनोंका मूल यहूदी है । भारतमें यहूदियोंकी भी कुछ संख्या है ।"* किंतु इन सबके होते हुए भी प्राचीन भारतमें केवल तीन मुख्य धर्म थे, अर्थात् जैनधर्म, हिन्दूधर्म और बौद्धधर्म । इनमें यद्यपि आपसमें प्रतिस्पर्धा बराबर चली आती रही है परन्तु पाश्चमात्य देशोंकी तरह यहां कभी भी धर्मके पवित्र नामपर लड़ाइयां नहीं लड़ी गईं । हां ! यह अवश्य है कि कभी २ हिंदू राजाओंने जैनों और बौद्धोंपर अत्याचार किए और कभी उन्होंने हिंदूओंपर किए, परन्तु वस्तुतः हिंदू अथवा जैन अथवा बौद्ध सभी राज्योंमें सभी संप्रदा-योंके पंडितोंका मान और सम्मान होता रहा ।

इतिहासकी आवश्यक्ता ।

"किसी बच्चेकी शिक्षा तबतक पूर्ण नहीं समझी जासक्ती जबतक कि उसको उस जाति और उस समाजके इतिहासका ज्ञान न हो-जिसके अंदर वह उत्पन्न हुआ है और जिसमें रहकर उसे अपने मानुषी कर्तव्योंको पूरा करना है । प्रत्येक व्यक्ति जो संसारमें जन्म लेता है वह बहुतसी प्रवृत्तियां अपने माता पिता और प्राचीन पूर्वजोंसे दायमें पाता है, जिस प्रकार प्रत्येक मनुष्य अपने पूर्वजोंका प्रति-

* ला० लाजपतराय कृत "भारतवर्षका इतिहास" भाग १ पृ०२३ ।
† पूर्व भाग १ पृ० २७ ।

निधि है उसी प्रकार प्रत्येक मानुषी समूह अपने जातीय पूर्वजोंका प्रतिनिधि है। कोई समाज अपनी वर्तमान अवस्थाको पूर्ण रूपसे नहीं जान सक्ता जब तक उसे यह ज्ञान न हो कि वह किन किन अवस्थाओंसे होकर यहांतक पहुंचा है।

समाजकी उन्नतिके लिए यह आवश्यक है कि उसे अपनी सब पूर्व अवस्थाओंका ज्ञान हो। प्रत्येक मनुष्य और प्रत्येक मानव समुदाय अपने समाजकी वर्तमान अवस्थासे प्रभावित होता है। वर्तमान अवस्थाएं भूतकालीन अवस्थाओंका परिणाम हुआ करती हैं। ऐसी अवस्थामें प्रत्येक मानव समुदायकी उन्नतिके लिये आवश्यक है कि उसको अपनी जातिके इतिहासकी अच्छी जानकारी हो। जबतक उसको ऐसी जानकारी न हो वह अपनी जातिकी उन्नति और सुधारके क्षेत्रमें कोई यथोचित पग उठानेके योग्य नहीं हो सक्ता।"

जैन समाज अपनी वर्तमान अधोदशासे निकलनेके प्रयत्नमें प्रयासशील है; परन्तु उसके पास अपने पुर्वजोंका एक क्रमबद्ध इतिहास न होनेके कारण वह अपने इस शुभ प्रयासमें उतनी सफल मनोरथ नहीं है जितनी कि होनेकी आशा थी। अपने पूर्वजोंकी उन्नत दशा और अपनी वर्तमान कालीन अवनत दशा एवं उनके कारणोंको जब हम ध्यानमें लायेंगे तब ही यथार्थ उन्नतिकी ओर पग बढ़ा सकेंगे।

हमारे अंतिम तीर्थंकर भगवान महावीरने हमको २४९१ वर्ष पहिले इस विषयमें पूर्ण सावधान कर दिया था। अर्थात् जिस जिस आत्माको अपना, लोकका और भूत भविष्यत वर्तमानका

ध्यान नहीं है वह सत्यमार्गका अनुशीलन नहीं कर सक्ता–अपने सार्वधर्मकी उपयोगिता जगतके निकट प्रगट नहीं कर सक्ता। इसलिए प्रत्येक जैनीका कर्तव्य है कि वह अपनी जातिमें वास्तविक-रीत्या कर्तव्यपरायण होनेके लिए जैन इतिहासका ज्ञान रक्खे। और जैन समाजमें एक वास्तविक इतिहासके अभावकी पूर्तिके लिए इस इतिहासके लिखनेका प्रयत्न है।

जैन इतिहासके काल विभाग और ऐतिहासिक आधार।

पूर्वोक्त वर्णनसे हमें ज्ञात होता है कि जैन इतिहास मुख्यतया तीन भागोंमें विभक्त किया जासक्ता है अर्थात्–(१) इतिहासकारोंद्वारा स्वीकृत कालके पहिलेका इतिहास अर्थात् २५०० वर्षसे पहलेका इतिहास। (२) उस समयका इतिहास जिस समय भगवान महावीरस्वामीने अपने तीर्थमार्गका प्रसार करके धर्मका प्रतिपादन किया था और उनके शिष्योंने उनके पश्चात् उसका प्रचार दिग्दिगान्तरोंमें फैलाया था अर्थात् ईसाके जन्मसे ६०० या ७०० वर्ष पहिलेसे लेकर ईसाकी तेरहवीं शताब्दि तकका इतिहास जिस कालमें जैनधर्मका परम उत्कर्ष रहा था। (३) और वह काल जिसमें भारतवर्षमें यवन लोगोंका अधिकार होगया था और जैनधर्मका वह प्रभाव घट चला था अर्थात् तेरहवीं शताब्दिसे लेकर आजतकका इतिहास। इन विभागोंके प्रथम भागके वर्णन करनेको हमारे पास केवल जैन शास्त्र हैं, तथापि कुछ२ सहायता हिंदुओंके शास्त्रोंसे भी मिलती है।

दूसरे भागके इतिहासका आधार हमें जैन और हिंदू साहित्यके अतिरिक्त बौद्धोंके ग्रन्थोंमें, राज्यनीतिके ग्रन्थोंमें, तत्कालीन

साधारण साहित्यमें, शिलालेख मुद्रादिमें एवं विदेशी पर्यटकोंके भ्रमण वृतांतोंमें मिलता है। तीसरे भागका आधार उपर्युक्तके अतिरिक्त यूरोपीय विद्वानोंके इतिहास एवं मुसलमान ग्रन्थकारोंके इतिहासोंमें प्राप्त है।

इस प्रकार जैन इतिहासके इन सर्व कालोंका पूर्ण विवरण उपस्थित करना परमावश्यक है। इस ही आवश्यक्ताको ध्यान करके श्री भा० दि० जैन परिषदने एक ऐसा ही विशद जैन इतिहास निर्माण करनेका कार्य श्रीयुत हीरालालजी एम० ए० की अध्यक्षतामें प्रारंभ कराया है। उसकी पूर्ति इस आवश्यक्ताको पूर्ण कर देगी किंतु तबतक उसी प्रस्तावके अनुरूपमें इस संक्षिप्त इतिहासके लिखनेका साहस हमने किया है; जिसमें हम भगवान महावीरके सर्व कल्याणकारी दिव्य धर्म-प्रभावसे ही कार्यकारी होंगे। अथच इस संक्षिप्त इतिहासका प्रथम भाग पाठकोंको समर्पित है। द्वितीय भागमें शेषके जैन कालोंका विवरण पाठकोंके समक्ष रक्खा जावेगा।

—लेखक।

॥ इति शम् ॥
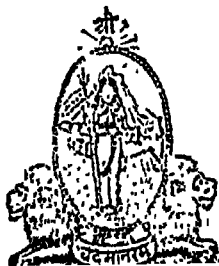
स्वाध्यायोपयोगी ग्रंथ।

भगवान महावीर मू०	१।।।) व २)	नीतिवाक्यमाला मू०	१)
श्रावकाचार ,,	।।।)	दानवीर माणिकचंद्र	१।।)
प्रवचनसार टीका–(प्रथम भाग ज्ञानतत्त्वदीपिका) मू०			१।।)
प्रवचनसारटीका–(द्वितीय भाग ज्ञेयतत्त्वदीपि ,,			१।।।)
गृहस्थधर्म–(द्वितीयावृत्ति) मू०	१।।।)	दशलक्षण धर्म ,,	।–)
सोलहकारण धर्म (,,) ,,	।।)	धर्मचर्चा संग्रह ,,	।।)
इष्टोपदेश टीका ,,	१।)	सुलोचनाचरित ,,	।।=)
समयसार टीका ,,	२।।)	महावीर चरित ,,	१।।)
महावीर चरित–(छोटा) ,,	=)	श्रीपालचरित ,,	।।।=)
बृहत् निर्वाण विधान व त्रैलोक्य जिनालय विधान ,,			।≡)
प्राचीन जैन इतिहास–(प्रथम भाग)	।।।)	आत्मधर्म ,,	।=)
,, –(दूसरा भाग)	१)	क्रियाकोष ,,	२।।)
सामायिकपाठ मू. –)।। व रु: ७) सैकड़ा		तत्वार्थसूत्र ,,	–)।।
तत्वमाला अर्थात् जिनेन्द्रमतदर्पण दूसरा भाग			।≡)
स्वसमरानंद अथवा चेतनकर्मयुद्ध मू.	≡)	अध्यात्म निवेदन	=)
सिद्धक्षेत्र पुजासंग्रह मू.	।।।)	श्रावक प्रतिक्रमण	।–)
जम्बूस्वामी चरित ,,	।)	रक्षाबंधन कथा मू०	=)।।
आत्मानंदका सोपान ,,	–)।।	दीपमालिका विधान मू०	–)
पुत्रीको माताका उपदेश	=)	प्रातःस्मरण मंगलपाठ ,,	–)
समाधिमरण व मृत्यु महोत्सव	=)	छहःढाला ,,	–)

इनके सिवाय और भी सब जगहके छपे ग्रन्थ मिलते हैं।

मैनेजर, दिगम्बर जैन पुस्तकालय–सूरत।

संक्षिप्त जैन इतिहास

प्रथम भाग

पहिला परिच्छेद।

जैन भूगोलमें भारतवर्षका स्थान।

भारतभूमिके विषयमें कहनेके लिये हमें सामान्यतया जैन भूगोलका दिग्दर्शन करना पड़ेगा। जैन दार्शनिकोंने आप्त वचनानुसार जीवित एवं अन्य पदार्थोंसे व्याप्त आकाशको लोकाकाश कहा है और इससे बाह्यको अलोकाकाश संज्ञा दी है। लोकाकाशके स्वरूपके विषयमें कहा गया है कि उसका आकार वैसा ही है जैसा पांव पसार कर दोनों हाथोंको चौड़ाकर कमर पर रख लेनेसे विना सिरके मनुष्यका आकार होता है। इस लोकके बीचमें मध्यलोक है जिसे मर्त्यलोक भी कहते हैं। इसके ठीक बीचमें एक लाख योजन अर्थात् चालीस करोड़ माइलका लंबा और इतना ही चौड़ा जम्बूद्वीप है। इस जम्बूद्वीपके बीचमें एक मेरु पर्वत है। इस पर्वतकी दक्षिण दिशाकी ओर भरतक्षेत्र है। यह अर्धचंद्राकार है। इस अर्धचंद्राकार भरतक्षेत्रके बीचमें एक पर्वत है जिसका नाम

विजयार्द्ध है। इस पर्वतसे भरतक्षेत्र दो भागोंमें बट गया है। इसी भरतक्षेत्रसे हमारा सम्बन्ध है। इसका आकार कुछ२ इस प्रकार हैः—
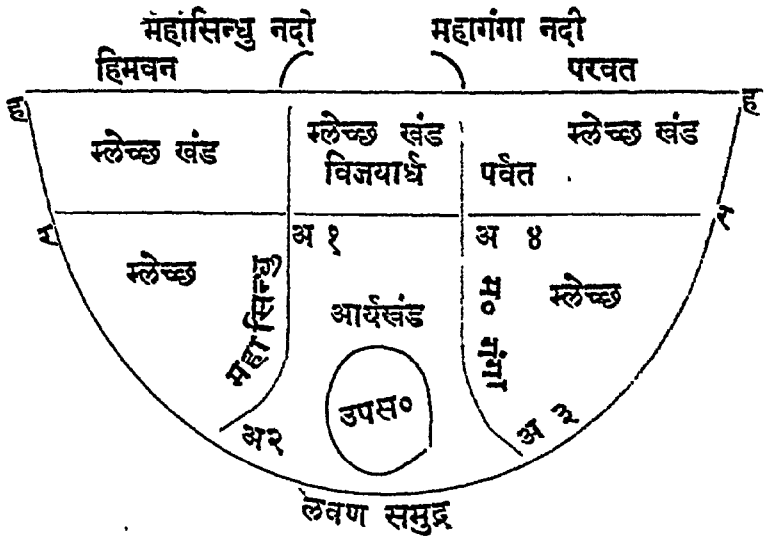
भरतक्षेत्रके दो विभागोंमें एक उत्तरीय विभाग दूसरा दक्षिणी विभाग कहलाता है। उत्तरीय विभागमें म्लेच्छ रहते हैं। दक्षिणी विभाग महासिन्धु और महागंगा नामक दो नदियों द्वारा तीन विभागोंमें विभक्त है। इन विभागोंके सर्व अन्तिम पूर्वीय और पश्चिमीय विभागोंमें भी म्लेच्छ रहते हैं। हमलोगोंका निवास मध्य विभागके उपससुद्रमें है (अ १, अ २, अ ३, अ ४)। इसकी पूर्व दिशामें महागंगा नदी, उत्तरमें विजयार्ध पर्वत, पश्चिममें महासिन्धु और दक्षिणमें लवण समुद्र है। भरतक्षेत्र ५२६$\frac{6}{19}$ योजन अर्थात् इक्कीस लाख चार हजार दोसौ दस माइल ग्यारह गज और ११$\frac{1}{3}$ इंच है। महासिंधु और महागंगा नामक नदियां और विजयार्ध पर्वत इसे छै भागोंमें बांट देता है, जैसा कि हम ऊपर देख चुके हैं।

आधुनिक समस्त संसार अर्थात् ऐशिया, यूरोप, अमेरिका, अफ्रीका, ऑस्ट्रेलिया आदि इसी आर्यखण्डके मध्यमें स्थित उपसमुद्रके अंतर्गत हैं, जिसके मध्यमें भूमि ऊपरको उठी हुई है और उसके चहुंओर समुद्र है। संभवतः इस उठी हुई जमीनके कारण आज एक मनुष्य पूर्वकी ओर चलता हुआ अपनेसे पश्चिममें स्थित स्थानपर पहुंच जाता है और यही कारण है कि अभी उत्तर और दक्षिण ध्रुवोंका ठीक पता नहीं लग पाया है। जो हो, आजकी खोज की हुई भूमिके अतिरिक्त भी और भूमि होना जैन भूगोल बतलाता है, जिसका पता हम लोगोंको अभी तक नहीं लगा है।

भारतवर्षका संक्षिप्त विवरण।

वर्तमान भूगोलिकोंके मतानुसार केवल भारतवर्ष ही आर्यखंड माना गया है और उसे आर्यावर्त अथवा भारतवर्षकी संज्ञासे अंकित किया है। इस भारतभूमिको विभिन्न मनुष्योंने अपनी २ भाषामें विविध नामोंसे पुकारा है। मुसलमान-लेखकोंने इस देशका नाम हिन्द और हिन्दुस्तान रक्खा था। 'हिन्दुस्तान' शब्द एक समास है जो अफघानिस्तान, बलोचिस्तान, तुर्किस्तान और जाबिलिस्तानके ढंगपर दो शब्दोंसे मिलकर बना है। और हिन्द वह पुराना नाम है जो सब विदेशी जातियोंने बहुत प्राचीन कालसे इसे दे रक्खा है। पुरानी रोमन और यूनानी पुस्तकोंमें इस देशके नाम इण्डो, इण्डीज और इण्ड आदि लिखे हैं। 'हिन्दू' उन्हीं शब्दोंका बिगडा हुआ रूप है। बहुत सम्भव है कि इसका यह नाम इण्डस नदीके कारण पड गया हो क्योंकि उसको संस्कृतमें

सिन्धु नदी कहते हैं । इसी व्युत्पत्तिके कारण यूरोपीय भाषाओंमें इस देशको इण्डया कहा है ।'*

वर्तमान भारतवर्षके उत्तरमें हिमालय पर्वत है जो करीब १६०० मील लम्बा है, और जिसके पार तिब्बत देश है । यह पर्वत आधुनिक संसारमें सबसे ऊंचा है । भारतके इस उत्तरीय भागमें नेपाल, भूतान और सिक्किम मिले हुए हैं। पूर्व दिशा ब्रह्मा और बंगालकी खाड़ीसे सीमाबद्ध है। पश्चिम दिशामें अफगानिस्तान बलोचिस्तान और अरब सागर हैं । इस देशका समग्र सागर तट अनुमानतः चार हजार मील लम्बा है और इसका समग्र क्षेत्रफल १८,०२,६५७ वर्गमील है।

"भारतवर्ष एक प्रकारसे अपनेआपमें एक छोटासा संसार है। इसमें प्रत्येक जातिके मनुष्य, प्रत्येक धर्मके अनुयायी, प्रत्येक रङ्गके व्यक्ति और सभ्यता तथा श्रेष्टताकी दृष्टिसे भी सब प्रकारके मनुष्य मिलते हैं। इस देशके पहाड़ ऊंचे और लम्बे हैं। उनमें बहुतसी बहुमूल्य खानें हैं। इस देशकी नदियां लम्बी, चौड़ी और पानीसे मुंहामुंह भरी हुई हैं। उनमें नावें चल सक्ती हैं। यहांके वन सैकड़ों वर्गमीलतक फैले हुए हैं। वे प्रत्येक प्रकारकी वनस्पतिसे सज्जित और नानाप्रकारके वृक्षोंसे परिपूर्ण हैं। उनमें बहुतसे अब कट चुके हैं और वहांकी भूमिपर अब खेती होती है। इस देशमें रेतीले मैदान भी मीलों तक फैले हुए हैं।......इस देशके अधिक भागमें खेती होती है। जिस प्रचुरतासे विविध प्रकारके शस्य, बीज, फल और फूल इस देशमें उत्पन्न होते हैं कदाचित ही सं-

* ला० लाजपतरायका "भारतवर्षका इतिहास" भाग १ पृ० ३७

सारके किसी अन्यभागमें उत्पन्न होते हों। यहांके वृक्ष बड़े सुन्दर, छायादायक और फलदार हैं। हमारे देशके बहुतसे प्रदेश ऐसे हैं जो अपनी उपजकी दृष्टिसे उद्यानके नमूने हैं। उनके दृश्य बहुत ही सुन्दर और मनोहर हैं। वहां सब प्रकारकी जड़ी बूटी, फल फूल और अन्य अनेक वस्तुएं उत्पन्न होती हैं।

हमारे पर्वतोंमें बहुतसी घाटियां ऐसी मिलती हैं जो निस्सन्देह स्वर्गके नमूना हैं। जैसे कि काश्मीरकी दृश्यावली, कुल्लूकी घाटियां और दार्जीलिंगकी चोटियां। सारांशमें यह देश इस योग्य है कि यहांके निवासी न इसपर अभिमान करें वरन् शुद्धभावसे इसकी पूजा करें।" *

भारतवर्षकी जन संख्या।

इस समस्त भारतकी जनसंख्या सन् १९२१ ई० की सरकारी मनुष्यगणनाके विवरणके अनुसार ३१८९४२४८० है। प्रत्येक धर्मके अनुयायियोंकी संख्या अलग अलग इस प्रकार है:—

धर्म			जनसंख्या
हिन्दू	....	....	२१६७३४५८६
मुसलमान	....	....	६६७२५३३०
सिक्ख	....	....	११७०५९६
ईसाई	....	....	४७५४०६
जैन	....	....	११५७२३८
बौद्ध एवं अन्य	....	....	३२६७९३२४

* Ibid भाग १ पृष्ट ३५—३६

भारतवर्षकी प्राचीन और अर्वाचीन आकृति।

भूतत्वविद्याके मातानुसार भारतवर्षकी प्राचीन आकृति वर्तमानकी भांति नहीं थी। उनका कहना है कि किसी समय पहिले उस प्रदेशतक जहां अब हिमालय, पञ्जाब और संयुक्त प्रान्त आदि स्थित हैं, समुद्र फैला हुआ था और इस देशकी दक्षिणी भूमि अफ्रिका महाद्वीपके पूर्वी स्थलसे मिली हुई थी। इसके अतिरिक्त प्रगटरीत्या भी बहुत परिवर्तन हुआ प्रतीत होता है। पहिलेकी बहुतसी नदियां और कितनेक नगर अब नहीं मिलते। बहुतसी नदियोंके प्रवाह मार्ग आदि बदल गए हैं। बहुतसे नगर उजड़कर फिरसे बस गए हैं। भारतके प्राचीन नगर भूगर्भमें हैं क्योंकि प्राचीन स्थानोंकी खुदाई करनेसे पृथ्वीके भीतरसे प्राचीन नगरोंके भवनोंके दो दो मंजिलके खंडहर मिले हैं जैसे प्राचीन पाटलीपुत्र और तक्षशिलाके स्थान खोदनेसे निकले हैं। पृथ्वीका इस तरह परिवर्तित होना किसी प्रकार भी अतिशयोक्ति नहीं रखता। जैन शास्त्रोंमें भूमिकी प्राकृतिक आकृतिमें परिवर्तन होते रहना माना गया है। अतएव भारतकी प्राचीन प्राकृतिक आकृति और उस परके प्रसिद्ध स्थानोंका निश्चय करना अति कठिन काम है। भारतवर्षके प्राचीन नगरों आदिके विषयमें गवरन्मेन्टके पुरातत्व विभागने अपने उद्योगसे कुछ अन्वेषण किया है और उसके परिणामरूपमें जो फल प्राप्त हुआ है उसका मूल्य अति अधिक है। उसका वर्णन यहांपर नहीं किया जासक्ता। सामान्यतया मि० कनिंगहम साहबके प्राचीन भूगोलसे लेकर वर्णित केवल कुछ बातें ला० लाजपतरायके प्राचीन इतिहाससे यहां उद्धृत करते हैं:—

भारतके प्राचीन प्रदेश और नगर।

चीनी पर्यटकोंने भारतको पांच बड़े प्रान्तोंमें विभक्त किया है। वे पांच प्रांत यह थेः—

(१) उत्तरीय भारत। इसमें संपूर्ण पंजाब विशेष, काश्मीर तथा अन्य निकटवर्ती पहाड़ी राज्य सिन्धु नदीके पार सम्पूर्ण पूर्वी अफगानिस्तान और वे सब देशी राज्य हैं जो सरस्वती नदीके पश्चिममें स्थित हैं।

(२) पश्चिमी भारत अर्थात् सिंधुदेश, पश्चिमी राजपूताना, थोड़ासा गुजरात तथा कुछ भाग उस प्रदेशका जो नर्मदा नदीके निचले भागमें स्थित है।

(३) मध्य भारत। इसमें वह सम्पूर्ण प्रदेश मिला हुआ था जो गङ्गा नदीके किनारोंपर स्थित है अर्थात् थानेश्वरसे लेकर द्वीप (डेल्टा)के मुहाने तक और हिमालय पर्वतसे लेकर नर्मदा तक।

(४) पूर्वी भारत। अर्थात् आसाम, बंगाल, गंगाके त्रिकोण द्वीपकी भूमि, सम्भलपुर, उड़ीसा और गंजाम तक।

(५) दक्षिणी भारत—अर्थात् सम्पूर्ण दक्षिण, पश्चिममें नासिक तक, पूर्वमें गंजाम तक, दक्षिणमें कुमारी अन्तरीय तक। इसमें वर्तमान बरार, तैलङ्ग महाराष्ट्र, कोंकण, हैदराबाद, मैसूर और ट्रावणकोर मिले हुए थे, अर्थात् वह सम्पूर्ण प्रदेश जो नर्मदा और महानदीके दक्षिणमें स्थित है।

उस प्राचीन समयके कतिपय बड़े बड़े नगरोंके नाम और स्थान इसप्रकार बतलाए जाते हैंः—

तक्षशिला–सुआन नदीके समीप हसन अवदाल और जेहलमके बीच था। बहुत सम्भव है कि इस नगरकी स्थिति वैसी ही थी जैसी कि इस समय रावलपिण्डीकी है।

सिंहापुर या सिंघापुर–जेहलम जिलेके अन्तर्गत कटासके झरनेके निकट था।

मतिपुर–पश्चिमी रुहेलखण्ड।

ब्रह्मपुर–गढ़वाल और कुमाऊं।

कौशाम्बी–यमुना नदीके तटपर प्रयागसे ऊपर स्थित है।

प्रयाग–इलाहाबाद।

वाराणसी या बानारस–बनारस।

वैशाली–गङ्गानदीके उत्तरमें तिर्हुतप्रान्त।

सरस्वती–वैदिक कालमें उस नदीका नाम था जो थानेश्वरके बीचमें बहती थी। बौद्धकालमें सरस्वती एक प्रदेशका नाम था जो अयोध्याके उत्तरमें राप्ती नदीके तटपर था।

पाटलिपुत्र–पटना।

राजगृह–पाटलिपुत्र और गयाके बीच एक नगर था।

नालन्द–पाटलिपुत्र और गयाके बीच एक विश्वविद्यालय।

यदि जैन दृष्टिसे हम इस विषयमें विचार करें तो हमें ज्ञात होता है कि अति प्राचीन जमानेमें जैनधर्मके इस युगकालीन धर्म प्रवर्तक श्री ऋषभदेव भगवानने ही भारतवर्षको विविध देशोंमें विभक्त किया था और उन पर राजाओंकी नियुक्ति की थी। "उस समय जो पुरुष भगवानसे वयोवृद्ध थे और कुटुंब (ईक्ष्वाकुवंश) से उत्पन्न थे उन्हें तो भगवान आदीश्वरने इक्ष्वाकुवंशीय

क्षत्री राजा बना पृथ्वीकी रक्षा करनेका भार सौंपा, जो कुरु देशके रहनेवाले शासक थे उन्हें कुरुवंशीय कहा, जो उग्र थे और जिनकी आज्ञा उग्र मालूम पडती थी उन्हें उग्रवंशीय बनाया, न्यायपूर्वक प्रजाकी रक्षा करनेवालोंको भोजवंशीय नामसे पुकारा और अनेक मनुष्य जो प्रजाको हर्षायमान रखते थे उन्हें सामान्य राजा बनाया।"* एवं उन्होंने (भगवानने) सुकोशल, अवंती, पुंड्र, उंड्र, अश्मक, रम्यक, कुरु, काशी, कलिंग, अंग, बंग, सुह्म, समुद्रक, काश्मीर, उशीनर, आनर्त, वत्स, पंचाल, मालव, दशार्ण, कच्छ, मगध, विदर्भ, कुरुजांगल, करहाट, महाराष्ट्र, सुराष्ट्र, आभीर, कोंकण, वनवास, आंध्य, कर्णाट, कौशल, चोल, केरल, दास, अभिसार, सौवीर, सूरसेन, अपरांत, विदेह, सिंधु, गांधार, यवन, चेदि, पल्लव, काम्बोज, आरद, वाल्हीक, तुरुष्क, शक और केकय इन बॉवन देशोंकी रचना की। † इन देशोंको मुख्य प्रदेशोंके अन्तर्गत इस प्रकार बताया गया है:—

(१) मध्यप्रदेश=काशी, कौशल, कौशल्य, कुसंध्य, अश्वष्ट, साल्व, त्रिगर्त, पंचाल, भद्रकार, पाटच्चर, मौक, मत्स्य, कनीय, सूरसेन एवं वृकार्थक।

(२) समुद्रतट प्रदेश=कलिंग, कुरुजांगल, कैकेय, आत्रेय, कांबोज, वाल्हीक, यवन, श्रुति, सिंधु, गांधार सौवीर, सूर, भीरु, दशेरुक, वाडवान, भारद्वाज और क्राथतोया।

(३) उत्तर प्रदेश=तार्ण, कार्ण, प्रच्छाल आदि।

---

* श्री जिनसेनाचार्य कृत हरिवंशपुराण सर्ग ८ पृष्ठ १२८।

† देखो सूरजमलकृत "जैन इतिहास" भाग १ पृष्ठ ३८।

(४) पूर्वप्रदेश=खड्ग, आंगारक, पौंड्र, मल्लप्रवक, बंग, मगध, मानवर्तिक, मलद आदि।

(५) दक्षिण प्रदेश=बाणमुक्त, वैदर्भ, माणव, सककापरि, मूलक, अश्मक, दांडिक, आसिक, नवराष्ट्र, महिषक आदि।

(६) विंध्याचल पृष्टभाग=दशार्णव, किष्किंध, त्रिपुरावर्त, नैषध, वैदिश, अंतप आदि।

जैन इतिहासमें उपर्णेल्लखित नगरोंके अतिरिक्त प्राचीन नगरोंका वर्णन साधारणतया इस प्रकार समझना चाहिए:—

अयोध्या, वा विनीता वा साकेता=अयोध्या, फैजाबादके निकट।

श्रावस्ती=अयोध्याके निकट है।

चन्द्रपुरी
सिंहपुरी } =बनारसके निकट है।

चम्पापुरी=वर्तमान भागलपुरके निकट। भगवान महावीरके समयमें यहां राजा श्रेणिक बिम्बसारके पुत्र कुणिक का राज्य था। यहीं भगवान वासुपूज्यका जन्म हुआ था।

कम्पिल्ला=जिला फरुखाबादमें कायमगंजके निकट।

रत्नपुरी=

सौरीपुर वा द्वारिका=द्वारिका।

कुण्डलपुर=वर्तमानमें इसका ठीक स्थान ज्ञात नहीं है।

हस्तिनापुर=हस्तिनापुर।

पावापुरी=बिहारसे दक्षिणकी ओर ७ मील पर।

द्वितीय परिच्छेद ।

भरतक्षेत्रमें समयचक्र और भोगभूमिका काल।

यूरोपके वैज्ञानिकोंका मत है कि मनुष्य पशुकी हालतसे उन्नति करते २ मनुष्यकी अवस्थाको प्राप्त हुआ है; परन्तु इस मतका आधार कोरीकल्पना पर है। इसलिए यह नितान्त असंगत और दार्शनिक सिद्धांतके विपरीत है। फिर मनुष्यकी उन्नति क्रमको तीन कालमें विभक्त किया गया है अर्थात् (१) प्राचीन "शिलाकाल" जिसमें मनुष्य मोटे२ पत्थरके यंत्रोंसे काम लेता था, (२) पत्थरोंके अच्छे यंत्रोंके बननेका समय, और (३) वह काल जिसमें मनुष्यने धातुओंका उपयोग प्रारम्भ किया। और यह भी केवल कल्पित व्याख्या है एवं सैद्धान्तिक दृष्टिसे बिल्कुल पोच है।

यथार्थमें मनुष्य अनादिकालसे है। संसारका प्रत्येक पदार्थ अनादि निधन है। जब मनुष्य था तब पशु, पक्षी, वृक्ष, जल, आदि सब थे। मनुष्य केवल पौद्गलिक पदार्थ नहीं है जो उसने पशुसे विकास करके मनुष्यकी दशाको पालिया हो। वास्तवमें वह पुद्गल और चेतन पदार्थ जीव (Conscious Being=Soul)का संयुक्त है? और वह इस संसारमें अपने पौद्गलिक संबंधको प्रचुरता, हीनता आदिके लिहाजसे पशु, मनुष्य, नरक, देव गतियोंमें भ्रमण करता है। इस विषयका पूर्ण वर्णन जैन ग्रन्थोंसे

देखना चाहिए। यहां पर प्रसंगवश इतना लिखा गया है। इस प्रकार मनुष्यका अस्तित्व अनादिकालसे है और उसका इतिहास भी उतने ही कालसे है।

अस्तु संसार (सृष्टि) अनादि है। उसका कर्ताहर्ता कोई नहीं है, परन्तु इसमें जो पलटनें हुआ करतीं हैं उनका आदि और अन्त अर्थात् शुरू और आखिर दोनों होते हैं। भरतक्षेत्रके आर्यखण्डमें भी यही नियम लागू है क्योंकि वह भी इस सृष्टिके अन्तर्गत है।

भरतक्षेत्रमें इस पलटनका नियम दो प्रकारसे है अर्थात (१) उन्नतिरूपसे और (२) अवनतिरूपसे। पहिली पलटनका नाम उत्सर्पिणी और दूसरीका नाम अविसर्पिणी है।* पहिली पलटनका जब प्रारम्भ होता है तब तो प्रत्येक वस्तुकी क्रम कर उन्नति होने लगती है और वह अपनी सीमापर पहुंचकर अविसर्पिणी पलटनका आरम्भ कर देती है जिसमें प्रत्येक वस्तुकी धीरे २ अवनति होने लगती है। वह अवनति भी अपनी सीमाको पहुँचकर उत्सर्पिणीके पूर्वक्रमको उत्पन्न कर देती है और इसी तरह इन पलटनोंका क्रम चालू रहता है। अर्थात् उन्नतिसे अवनति और अवनतिसे उन्नतिकी पलटन हुआ करती है। " उन्नति और अवनति जो मानी गई है वह समूहरूपसे मानी गई है, व्यक्तिरूपसे

* इन उत्सर्पिणी और अविसर्पिणीका उल्लेख अलबेरूनीने अपने विवरणमें किया है, किन्तु उसके भ्रान्तवर्णनसे ऐसा प्रकट होता है कि उसके समयमें जैनियोंका ह्रास बहुत कुछ हो चुका था। (देखो अलबेरूनीका भारतवर्ष)।

नहीं। उन्नतिके समयमें व्यक्तिगत अवनति भी हुआ करती है और अवनतिके समयमें व्यक्तिगत उन्नति भी होती है। और विशेषकर उन्नति अवनति, जैनधर्म जड़पदार्थोंकी उन्नति-अवनतिसे नहीं मानता किन्तु आत्माकी उन्नति और अवनतिसे मानता है। पलटन इस भांति हुआ करती है।

प्रत्येक पलटनके छह हिस्से होते हैं। और वह १० कोड़ा-कोड़ी सागरकी होती है।

(१) अवनतिकी पलटनके पहले हिस्सेका नाम 'सुषमासुःषमा' होता है। यह समय चार कोड़ाकोड़ीसागरका होता है। इस समयके मनुष्योंकी आयु तीन पल्यकी होती है। शरीरकी ऊंचाई चौवीसहजार हाथोंकी होती है। ये मनुष्य बड़े ही सुंदर और सरलचित्तके होते हैं। इन्हें भोजनकी इच्छा तीन दिन बाद होती है और इच्छा होते ही कल्पवृक्षोंसे प्राप्त दिव्यभोजन जो कि बेर (फल) के बराबर होता है, करते हैं। इनको मल, मूत्रकी बाधा व बीमारी आदि नहीं होती। स्त्री और पुरुष दोनों एक साथ एक ही उदरसे उत्पन्न होते हैं और बड़े होनेपर पति पत्नीके समान व्यवहार भी करते हैं परन्तु उस समय भाई बहिनके भावकी कल्पना न होनेसे दोष नहीं समझा जाता। वस्त्र, आभूषण आदि भोगोपभोगकी सामिग्री इन्हें कल्पवृक्षोंसे प्राप्त होती है। कल्पवृक्ष पृथ्वीके परमाणुओंके होते हैं। वनस्पतिके जातिके नहीं होते। इनके दशभेद होते हैं। और दशों तरहके वृक्षोंसे मनुष्योंको भोगोपभोगकी सामिग्री जैसे वस्त्र, आभूषण, भोजन आदि प्राप्त होते रहते हैं। इनके यहां संतान (सिर्फ एक पुत्र

और एक पुत्री एक साथ) उत्पन्न होते ही माता पिता दोनों मर जाते हैं। बालक स्वयं अपने अंगूठोंको चूस चूस कर उन-पचास दिनोंमें जवान होजाते हैं। स्त्री पुरुष दोनों साथ मरते हैं और मरते समय स्त्रीको छींक और पुरुषको जंभाई आती है। शरीरकी ऊंचाई व मनुष्यकी आयु क्रमशः घटती जाती है।

(२) अवनतिकी पलटनके दूसरे हिस्सेका नाम सुःषमा है। यह तीन कोड़ाकोड़ी सागरका होता है। इसमें पहिले हिस्सेसे शरीरकी उंचाई आदि घट जाती है। इस कालके मनुष्योंकी ऊंचाई सोलह हजार हाथ और आयु दो पल्यकी होती है। यह भी क्रमशः घटती जाती है। इतनी ऊंचाई व आयु इस हिस्सेमें प्रारंभमें होती है। इस कालके भी मनुष्य बहुत सुंदर होते हैं और भोजन आदि भोगोपभोगके पदार्थ कल्पवृक्षोंसे पाते हैं। इन दोनों (पहिले व दूसरे) हिस्सोंमें कोई राजा महाराजा नहीं होता। सूर्य और चंद्रमाका प्रकाश भी कल्पवृक्षोंके कारण प्रगट नहीं रहता। सिंहादि क्रूर जंतुओंका स्वभाव शांत रहता है।

(३) तीसरे हिस्सेका नाम सुःषमा दुःषमा है। यह दो कोड़ाकोड़ी सागरका होता है। इस समय मनुष्योंकी आयु एक पल्यकी और ऊंचाई एक कोशकी होती है। इस समय मनुष्य एक दिन बाद भोजन करते हैं और वह भोजन आंवलेके बराबर होता है। अवनतिकी पलटन होनेके कारण सब बातोंकी घटती होती जाती है। यद्यपि इतिहासका प्रारंभ उन्नति और अवनति की पलटनके पहिले हिस्सेके प्रारंभसे ही होता है, परन्तु प्रकृत इतिहासका प्रारम्भ तीसरे हिस्सेके आखिरी भागसे ही होता है।

क्योंकि इतने समय तकके मनुष्य विना परिश्रमके कल्पवृक्षों द्वारा प्राप्त पदार्थोंका ही भोग करते रहते हैं और कोई धर्म, कर्म भी नहीं रहते जिससे कि मनुष्योंकी जीवन घटनाओंमें परिवर्तन हो अतः प्रकृत इतिहास तीसरे भागके पिछले हिस्सेसे ही प्रारंभ होता है। इसी अंतिम समयमें कुलकरोंकी उत्पत्ति होती है। स्त्रियां पुरुषोंको आर्य और पुरुष स्त्रियोंको आर्ये कहा करते हैं और इस समयमें कोई वर्ण भेद भी नहीं होता–सब एकसे होते हैं।

(४) चौथा हिस्सा व्यालीस हजार वर्ष कम एक हजार कोड़ाकोड़ी सागर समयका होता है। इसके प्रारम्भमें मनुष्योंकी आयु ८४ लाख पूर्वकी होती है और शरीरकी ऊंचाई २२०० हाथकी होती है। अंतमें जाकर मनुष्य-शरीरकी ऊंचाई अधिकसे अधिक ७ हाथकी रह जाती है। यह समय कर्मभूमिका कहलाता है क्योंकि इस समयके मनुष्योंको जीवन चलानेके लिये व्यवहारिक कार्य करने होते हैं। राज्य, व्यापार, धर्म, विवाह आदि कार्य इसी हिस्सेके प्रारंभसे होने लगते हैं। इसी हिस्सेमें जीवन चलानेके अन्यान्य साधनोंकी उन्नतिका प्रारंभ होता है। यह उन्नति जीवन निर्वाहके जड़ साधनोंकी उन्नति है और बराबर होती जाती है, परंतु आत्मज्ञान, अध्यात्म विद्या, सरलता आदि उच्च भावोंकी कमी होती जाती है।

इसी हिस्सेमें चौवीस महापुरुष उत्पन्न होते हैं जो अपने ज्ञानसे सत्धर्मका प्रकाश करते हैं। इनकी उपाधि तीर्थङ्कर हुआ करती है। इस चौथे हिस्से तक ही मोक्षमार्ग जारी रहता है अर्थात् इस हिस्सेके अंत तक ही मनुष्य मोक्ष जा सक्ता है। आगे मोक्षमार्ग

बंद हो जाता है। चक्रवर्ती, नारायण, प्रतिनारायण आदि प्रसिद्ध प्रसिद्ध पुरुष भी इस हिस्सेमें होते हैं। इन पुरुषोंकी संख्या ६३ होती है और वह त्रेसठशलाका पुरुष कहलाते हैं।

(५) इसके बाद अवनतिकी पल्टनका पांचवां भाग आता है। इसका नाम दुःषमा काल है। यह इक्कीसहजार वर्षका होता है। इसमें मनुष्य-शरीरकी आयु, बल और लंबाई बहुत कम होती जाती है। इसके प्रारंभमें ७ हाथका शरीर होता है और १२० वर्षकी आयु रहती है। फिर प्रति हजार वर्षमें पांच वर्ष आयु घटती जाती है। अंत समयमें दो हाथका शरीर व बीस वर्षकी आयु रह जाती है। उस समय मनुष्य मांसभक्षी और वृक्षोंपर बंदरोंके समान रहनेवाले होते हैं। धर्मका लोप होजाता है।

(६) छठवें भागमें और भी अवनति होजाती है। इस भागका नाम दुःषमा दुःषमा है। इस कालके जब उनचास दिन शेष रह जाते हैं तब धूल, हवा, पानी अग्नि, पत्थर, मिट्टी, विष की सात सात दिनों तक वर्षा होती है अर्थात् प्रबलता होती है। और इनकी प्रबलतासे आर्यखंडके सम्पूर्ण पशु, पक्षी, मनुष्य, नगर, देश, मकान आदि नष्ट हो जाते हैं। यह समय प्रलयका कहलाता है। केवल ऐसे प्राणी जो मातापिताके संयोगसे उत्पन्न होते हैं वे देवोंद्वारा तथा स्वतः सुरक्षित स्थानोंमें जा रहते हैं। यही समय अवनतिकी पल्टनकी पूर्णताका है।

अवनतिकी पल्टन पूरी हो जानेपर (अवसर्पिणी काल पूरा हो जानेपर) उन्नतिकी पल्टन (उत्सर्पिणी काल) का प्रारम्भ होता है। इसके पहिले भागका नाम दुःषमा दुःषमा, दूसरा

दुःखमा, तीसरा सुखमा दुःखमा, चौथा दुःखमा सुखमा, पाँचवाँ सुषमा और छठवाँ सुषमासुषमा होता है। इनमें क्रमशः आयु, काय सुख दुःख उसी तरह बढ़ते जाते हैं जिस तरह अवनतिकी पलटनमें घटते थे। अवनतिकी पलटनके छठवें भागमें जैसा कुछ समय रहता है वही उन्नतिके पहिले भागमें होता है और पहिले भागमें जो होता है वह उन्नतिके छठवें भागमें होता है।

इस प्रकार आर्यखण्डमें समयका परिवर्तन होता है। वर्तमान समय अवनतिकी पलटनका पाँचवाँ हिस्सा है—पंचमकाल है। इसके पहिले चार काल और इस पलटनके पूरे हो चुके हैं।"*

अस्तु, उपरोक्त प्रकार समयचक्रसे हमें ज्ञात होता है कि तीसरे काल अर्थात् भोगभूमिके अन्तिम समयसे प्रकृत इतिहास प्रारम्भ होता है। भोगभूमि उस समयको कहते हैं जिसमें विना किसी व्यापार आदि क्रियाके भोगोपभोगकी सामिग्री मिलती हो। इसीके अंतिम समयमें १४ कुलकर व मनू जन्म धारण करते हैं। इनके द्वारा जीवनकी व्यवहारिक व्यवस्थाका नींवारूपण हो जाता है। इनका विवरण इस प्रकार है।

कर्मभूमिके वह मनुष्य जो स्वभावसे ही मंदकषाई सम्यक्दृष्टि एवं उत्तम आदि पात्रोंमें दान देनेवाले होते हैं। वह भोगभूमिमें जन्म धारण कर भोगोपभोगका सुख उठाते हैं।

यह कुलकर गंगा एवं सिंधु दोनों नदियोंके मध्यमें उत्पन्न होते हैं। और इनके जन्म समय कल्पवृक्षोंकी प्रभा मंद होजाती है। कुल-

* सूरजमल जैन कृत "जैन इतिहास" भाग १ पृष्ठ १६-१२.

करोंमें सबसे पहिले कुलकर प्रतिश्रुति थे। इनके कालमें मनुष्योंने आषाढ सुदी पूर्णमासीके दिन आकाशमें चंद्र और सूर्य देखे। यद्यपि चंद्र सूर्य अनादिकालसे सदैव उदय अस्तको प्राप्त होते रहते थे और विद्यमान थे, परन्तु उसे दिन तक ज्योतिरंग जातिके कल्पवृक्षों के होनेकी वजहसे उनका प्रकाश प्रकट नहीं होता था। अब इस दिन इन ज्योतिरंग जातिके वृक्षोंका प्रकाश क्षीण हो गया था; इसलिए चंद्र और सूर्य दिखाई देने लगे। उसदिन इन चंद्र और सूर्यको देखकर मनुष्य बड़े भयभीत हुए और किसी विघ्नकी आशङ्का करने लगे। तब वे मनुष्य अपनेमें अतिशय प्रभावी और सृष्टिपरिवर्तनके नियमोंको जाननेवाले प्रतिश्रुति नामक प्रथम कुलकरके पास गए और उनसे सब हाल कहा। प्रतिश्रुतने उन आगत मनुष्यों को चंद्र-सूर्यका स्वरूप समझाया और भविष्यमें जीवन निर्वाहकी विधि बतलाई। इस बोधसे मनुष्योंको शान्ति हुई और इस प्रकार इन्हींके समयसे इतिहासका प्रारंभ हुआ।

कालके भेदसे पदार्थोंके स्वभावमें अंतर पड़ जाता है। द्रव्य, क्षेत्र और प्रजाका आचरण औरसे और हो जाता है। प्रसेनजितके समय तक लोग निरपराध थे इसलिए दंड भी निश्चित न थे, परन्तु उनके ही समयसे अब आगे लोग अपराधी होने लगे, अनेक उपद्रव करने लगे इसलिए उन्हें उपद्रवोंसे रोकनेके लिए हा, मा, और धिक्कार ये तीन दंड निश्चित किये गए*। इस दंडनीतिका प्रयोग उस समय इस सुचारुभावसे किया जाता था कि 'जो मनुष्य किसी कालदोषसे किसी मर्यादाके उल्लंघन करनेकी

* श्री हरिवंशपुराण सर्ग ७ श्लोक १४०-४१

इच्छा रक्खें चाहे वे आत्मीयजन हों या परजन हों उन्हें उनके दोषके अनुकूल अवश्य दंडित किया जाना चाहिये, इस प्रकार दंडनीति व्यवहार व्यवस्था आदि करनेकी अपेक्षा प्रतिश्रुत ही प्रथम कुलकर हुए और मनुष्य उनका कहना मानने लगे।

राजा प्रतिश्रुतिके सन्मति नामका पुत्र उत्पन्न हुआ और वे पल्यका दशवां भाग जीकर स्वर्गलोकके अतिथि बने। इसलिये सन्मति दूसरे कुलकर हुए। इनके समयमें ज्योतिरंग नामके कल्प-वृक्षोंका प्रकाश इतना भी नहीं रहा था कि तारागणों और नक्ष-त्रोंका प्रकाश भी लोगोंको दृष्टिगोचर होने लगा। इस प्रकार तारादिकोंको प्रकट होते देखकर उस समयके मनुष्य फिर डरने लगे और वे सन्मतिके पास आए। इन्होंने उनको समझाया ज्यो-तिषचक्रका सब हाल बताया रात्रि, दिन, सूर्यग्रहण होना आदि सब ही उनको समझाया और ज्योतिष विद्याका प्रचार किया। इस प्रकार "सन्मति पिताकी मर्यादाका भले प्रकार रक्षक था, अनेक कलाओंमें निपुण था और प्रजाको अतिशय मान्य था।"

तीसरे कुलकर सन्मतिके पुत्र क्षेमंकर थे। इनके समयमें सिंहादि क्रूर जंतुओंने अपने शांतभावको छोड़कर कुछ क्रूरताको धारण कर लिया था, इसलिये वे मनुष्योंको तकलीफ देने लगे। पहिले मनुष्य इन पशुओंके साथ रहते थे; परन्तु अब क्षेमंकरके कहनेसे वे उनसे अलग रहने लगे और उनपर विश्वास नहीं करने लगे। इस प्रकार इन्होंने उन सिंहादि पशुओंसे बचनेके अनेक कारण बता लोगोंका बड़ा उपकार किया था।

पहले कुलकरोंकी भांति असंख्यात करोड़ों वर्ष बाद चौथे

क्षेमंधर नामके मनु हुए। इनके समयसे सिंहादि क्रूर पशुओंकी क्रूरता और भी बढ़ गई। इसलिये उनसे रक्षा करनेके लिये इन्होंने उन मनुष्योंको लाठी आदि रखनेका उपदेश दिया।

इनके भी असंख्यात् करोड़ों वर्ष बाद सीमंकर नामके पांचवें कुलकर हुए। इनके कालमें कल्पवृक्षोंकी संख्या कम होगई थी और वे फल भी थोड़ा देने लगे थे इसलिए मनुष्य आपसमें झंगड़ा करते थे। इन्होंने उन झगड़ोंको दूर किया। हर एककी सीमा बांध दी और बटवारा कर दिया, जिससे अपनी २ हद्दके अनुसार लोग उन कल्पवृक्षोंसे लाभ लेने लगे। सीमंकर पल्यका लाखवां भाग जीकर आयुके अंतमें स्वर्ग गया।

इनके स्वर्गवास होनेपर इनका पुत्र सीमंधर छट्ठा कुलकर हुआ 'सीमंधर वास्तवमें सीमंकर (पिताकी मर्यादा रखनेवाला) था। और वह भी पल्यका दश लाखवां भाग आयु व्यतीत कर स्वर्गलोक गया।'*

सीमंधरके पश्चात् सातवां कुलकर विपुलवाहन वा विमलवाहन हुआ। इन्होंने हाथी, घोड़ा, बैल आदि सवारी करनेवाले पशुओंपर सवारी करनेकी विधि बतलाई।

इनके असंख्यात करोड़ वर्षोंके बाद चक्षुष्मान नामक आठवें कुलकर हुए। इनके समयके पूर्व संतान उत्पन्न होते ही उनके माता पिता मर जाते थे, परन्तु इनके समयसे संतान होनेके क्षणभर बाद मरने लगे। इन्होंने लोगोंको संतान होनेका कारण बतलाया।

* श्री हरिवंशपुराण सर्ग ७ श्लोक १५-१६

इनके भी असंख्यात करोड़ वर्षोंके बाद नौवें कुलकर यशस्वान् हुए। इन्होंने मनुष्योंको अपनी संतानोंका नाम धरना सिखाया। इनके समयमें मातापिता कुछ काल तक संतानके साथ रहकर मरते थे।

इनके उतने ही समय बाद अभिचंद्र नामके दशवें कुलकर हुए। इनके समयमें मातापिता अपनी संतानोंके साथ क्रीडा करने लगे, इसलिये इन्होंने संतानपालन आदिकी विधि बतलाई।

ग्यारहवें कुलकर चंद्राभ थे; जिनके समयमें प्रजा संतानके साथ पहिलेसे अधिक दिनोंतक रहकर मरण करती थी। इनके कुछ समय बाद बारहवें कुलकर मरुदेव हुए। इनके पहिले पुत्र पुत्रीका जोड़ा पैदा होता था, परन्तु इसके जोड़ा न पैदा होकर तेरहवां कुलकर एक ही प्रसेनजित नामका पुत्र उत्पन्न हुआ, सो इससे यह जाना कि अबसे युगलिया पैदा न होकर एक ही पुत्र या पुत्री उत्पन्न हुआ करेंगे। राजा मरुदेवने पुत्र प्रसेनजितका किसी उत्तम कुलकी कन्यासे विवाह कर दिया। राजा मरुदेवके आधीन उस समयकी सब व्यवस्था थी। 'इन्होंने जलमार्गमें गमन करनेके लिये छोटी बडी नाव चलानेका उपाय बताया। पहाड़ों पर चढनेके लिये सीढ़ियां बनाना बताया। इन्हींके समयमें छोटी, बड़ी कई नदियां और उपसमुद्र उत्पन्न हुए व मेघ भी न्यूनाधिकरूपसे बरसने लगे।'

फिर कुछ समय बाद मरुदेवके स्वर्ग प्राप्त करनेपर प्रसेनजित तेरहवें कुलकर हुए। 'इनके समयमें संतान जरायुसे ढकी उत्पन्न होने लगी। इन्होंने उसके फाडनेका उपाय बतलाया। इन सर्व

व १४वें कुलकर नाभिरायमेंसे किसीको अवधिज्ञान[१] होता था और किसीको जातिस्मरण[२] होता था। प्रजाके जीवनका उपाय जाननेके कारण ये मनु कहलाते थे। इन्होंने कई वंशोंकी स्थापना की। अतः कुलकर कहलाते थे।' *

तेरहवें कुलकरके कुछ ही समय बाद चौदहवें कुलकर महाराजा नाभिराय हुए। इनके समयमें कल्पवृक्ष करीब २ नष्ट हो चुके थे, परन्तु इनके महलमें वे वैसे ही विद्यमान थे, अतः भोगभूमिका अन्त महाराज नाभिरायके समयमें होगया था और कर्मभूमिका प्रारम्भ हुआ था अर्थात् जीविकाके लिये व्यापारादि कार्य करनेकी आवश्यक्ता हुई। 'इस समयके लोग व्यावहारिक कृत्योंसे बिलकुल अपरिचित थे। खेती आदि करना कुछ नहीं जानते थे और कल्पवृक्ष नष्ट हो ही चुके थे 'जिनसे कि भोजन सामग्री आदि प्राप्त हुआ करती थी' अतएव इन्हें अपनी भूख शांत करनेके लिये बड़ी चिंता हुई और व्याकुलचित्त होकर महाराज नाभिरायके पास आये।

यह समय युगके परिवर्तनका था। कल्पवृक्षोंके नष्ट होनेके साथ ही जल, वायु, आकाश, अग्नि, पृथ्वी आदिके संयोगसे धान्योंके वृक्षोंके अंकुर स्वयं उत्पन्न हुए और बढ़कर फल युक्त हो गये व फलवाले और अनेक वृक्ष भी उत्पन्न हुए। जल, पृथ्वी, आकाश आदिके परमाणु इस परिमाणमें मिले थे कि उनसे स्वयं

---

१ परिमित देश, क्षेत्र, काल और भाव संबंधी तीनों कालका जिससे ज्ञान हो वह अवधिज्ञान है।

२ जाति स्मरणसे भूतकालका स्मरण होता है।

* "जैन इतिहास" बाबू सूरजमलकृत पृष्ठ २५-२६।

ही वृक्षोंकी उत्पत्ति होगई परन्तु उस समयके मनुष्य इन वृक्षोंका उपयोग करना नहीं जानते थे। इसलिए महाराज नाभिरायके पास जाकर उन लोगोंने अपने क्षुधादि दुःखोंको कहा और स्वयं उत्पन्न होनेवाले वृक्षोंका उपयोग करनेका उपाय पूछा। महाराज नाभिरायने उनका डर दूर कर उपयोगमें आसकनेवाले धान्य वृक्ष और फल वृक्षोंको बताया व इनको उपयोगमें लानेका ढंग भी बताया तथा जो वृक्ष हानि करनेवाले थे, जिनसे जीवनमें बाधा आती और रोग आदि उत्पन्न होसक्ते थे उनसे दूर रहनेका उपदेश दिया।

'यह समय कर्मभूमिके उत्पन्न होनेका समय था। उस समय लोगोंके पास वर्तन आदि कुछ भी नहीं थे, अतएव महाराजा नाभिरायने उन्हें हाथीके मस्तकपर मिट्टीके थाली आदि वर्तन स्वयं बनाकर दिये व बनानेकी विधि बताई। नाभिरायके समयमें बालकके नाभिमें नाल दिखाई दी और उन्होंने इस नालके काटनेकी भी विधि बताई।*

"हाथीके माथेपर वर्तन बनाने तथा भोजन बनाना न जानने

---

* जैनधर्मके इस कालविभाग और खगोल विद्याके सम्बन्धमें विद्वानोंका मत है कि यह सर्व प्राचीन हैं। डॉ० स्टीवेन्सन साहब "कल्पसूत्र" की भूमिकामें यही लिखते हैं:—

"For an account of the Jain uranography and geography, I must refer the reader to the **Asiatic Researches**, Vol. IX. Their system seems to have been formed before that of Brahmans, as they have but three terrestrial continents and two seas."

—(Kalpasutra and Navatattwa Intro. XXIV.)

आदिसे उस समयके लोगोंको आजकलके मनुष्य चाहे असभ्य कहें और शायद जंगली भी कह दें और इसीपरसे इतिहासकार परिवर्तनके इस कालको दुनियांका बाल्यकाल समझते हैं, पर जैन इतिहासकी दृष्टिसे उस समयके लोग असभ्य या जंगली नहीं थे; क्योंकि वह समय परिवर्तनका था। जिस तरह एक समाजके मनुष्योंको दूसरी समाजके चालचलन अटपटे मालूम होते हैं और वह उनका अच्छी तरह संपादन नहीं कर सक्ता, उसी प्रकार भोगभूमिके समयके—ऐसे समयके जिसमें कि भोग उपभोगके पदार्थ स्वयं प्राप्त होते थे—रहनेवालोंको यदि ऐसा समय प्राप्त हो जिसमें कि स्वयं मिलना बंद होजाय तो उन्हें अपना जीवन निर्वाह करना कठिनसा हो जायगा और वे जो कुछ उपाय करेंगे वह अपूर्ण और अटपटासा होगा। ऐसा ही समय महाराज नाभिरायके सन्मुख था, अतएव यह समयका प्रभाव था। इसलिये जैन इतिहास उस समयके मनुष्योंको असभ्य नहीं कह सक्ता। न वह जगतका बाल्यकाल था किंतु कर्मभूमिका बाल्यकाल था। उस समय जीवन निर्वाहके साधन बहुत ही अपूर्ण थे।"×

महाराजा नाभिरायके अतिशय रूपवान, महान पुण्यवान एवं विद्वान् महषी मरुदेवी थीं। इन्हींके पवित्र गर्भसे प्रथम तीर्थ-ङ्कर भगवान ऋषभदेवका जन्म हुआ था, जिन्होंने कर्मभूमिकी प्रवृत्ति की थी और धर्मका मार्ग सबसे पहिले दर्शाया था। अस्तु, प्रकृत इतिहासका वास्तविक वर्णन यहांसे ही प्रारम्भ होता है जिसका समावेश हमारे इतिहासके प्रथमभागमें होता है।

× देखो बाबू सूरजमलका "जैन इतिहास" भाग १ पृष्ठ २३-२४।

तृतीय परिच्छेद।

भगवान ऋषभदेव और कर्मभूमिकी प्रवृत्ति।

हम अपने पूर्व परिच्छेदमें देख आए हैं कि भगवान ऋषभदेवके समयसे कर्मभूमिकी प्रवृत्ति हुई थी और उसी कर्मभूमिके चौथे पलटनमें क्रमसे ६३ शलाका पुरुषोंका होना जान आए हैं। जैनधर्मानुसार ६३ शलाका पुरुषोंका वर्णन इस प्रकार है अर्थात (१) २४ तीर्थंकर (२) १२ चक्रवर्ती (३) ९ नारायण (४) ९ प्रतिनारायण (५) ९ बलभद्र। यह ६३ ही महापुरुष क्रमसे इसी पवित्र भारत महीपर हुए थे। इनका संक्षिप्त वर्णन निम्नप्रकार है:—

कर्मभूमि और ६३ शलाका पुरुष

जैनधर्ममें प्रत्येक युगमें २४ तीर्थंकर माने गए हैं। इस युगके आदि तीर्थंकर श्री ऋषभदेव थे। जैनधर्ममें तीर्थंकरसे भाव उस महाव्यक्तिसे है जो इस संसार समुद्रसे पार उतरनेके लिये और मोक्ष स्थानको प्राप्त होनेके लिए एक धर्म तीर्थकी स्थापना करते हैं। तीर्थंकरका पद जीवको अपने पूर्वभवके विविध गुणोंमें अपनेको पूर्ण करनेसे एवं आत्माके गुणोंको घातक दर्शनावर्णीय आदि कर्मोंके आत्मासे हट जानेपर प्राप्त होता है और वे अनन्त चतुष्टयका उपभोग करते हैं अर्थात् अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त वीर्य और अनन्त सुख एवं अन्य परमात्मगुणोंके अधिकारी होते हैं। अस्तुः वृहत

२४ तीर्थंकर।

स्वयंभू स्तोत्रमें श्री समन्तभद्राचार्यजी तीर्थंकर भगवानके विषयमें क्या ही उत्तम कहते हैं: " येन प्रणीतं पृथु धर्मतीर्थं ज्येष्टं जनाः प्राप्य जयन्ति दुःखं।" इन २४ तीर्थङ्करोंमेंसे २२ तो इक्ष्वाकु वंशके थे, १ हरिवंशके थे और १ काश्यपीय नाथवंशके थे।*

इन २४ तीर्थंकरोंमें सर्व प्रथम भगवान ऋषभदेव थे।

श्री ऋषभदेव

ये १४ वें कुलकर नाभिरायके पुत्र थे और कर्मभूमिके प्रवर्तक और धर्मतीर्थके सर्व प्रथम संस्थापक थे। इनके जन्मसे १५ महिने पहिले ही पुण्य प्रभावकी महानतासे महाराजा नाभिराय और रानी मरुदेवीके रहनेके लिए देवोंने विशाल अयोध्यापुर नगर बनाया था और उसमें एक सुंदर राजमहल बनाया एवं तब हीसे वहां इन्द्रोंने रत्नोंकी वर्षा करना प्रारंभ की थी। भगवानके पिताके राजमहलके विषयमें श्री हरिवंशपुराणमें लिखा है कि "राजा नाभिके मंदिरका नाम सर्वतोभद्र था। यह सर्वतोभद्र अनेक स्वर्णमई स्तंभोंसे व्याप्त, भांति भांतिकी मणिमयी भित्तियोंसे शोभित, पुष्पोंकी माला, मूंगोंकी माला एवं मोतियोंकी मालासे रमणीय चौतर्फी विशाल था। इसमें इक्यासी खने थे एवं उत्तमोत्तम प्राकार (परकोर) बावड़ी और उपवनोंसे इसकी शोभा विचित्र ही दीख पड़ती थी॥ ८॥ ३-४॥"

जिस समय भगवान ऋषभदेव गर्भमें आए उसके पहिले

---

* इक्ष्वाकु वंशमें प्रारंभसे ही जिनधर्मका प्रचार रहा है। कवि सम्राट् कालिदास भी इस ही बातकी पुष्टि करते हैं। उन्होंने लिखा है कि रघुगण जो इक्ष्वाकु वंशके थे उन्होंने प्रारंभिक जीवनमें राजभोग कर अन्तमें साधु हो तपस्याके बल मुक्ति प्राप्त की है।

महारानी मरुदेवीने इसभांति शुभके सूचक सोलह स्वप्न देखे—(१) सफेद एरावत हाथी (२) गंभीर आवाज़ करता हुआ एक बड़ा भारी बैल (३) सिंह (४) लक्ष्मी (५) फूलोंकी दो मालाएं (६) तारों सहित चंद्रमण्डल (७) उदय होता हुआ सूर्य (८) कमलोंसे ढके हुए दो सुवर्ण कलश (९) सरोवरोंमें क्रीड़ा करती हुई मछलियां (१०) एक बड़ा भारी तालाव (११) समुद्र (१२) सिंहासन (१३) रत्नोंका बना हुआ विमान (१४) पृथ्वीको फाड़ कर आता हुआ नागेन्द्रका भवन (१५) रत्नोंकी राशि और (१६) विना धुएंकी जलती हुई अग्नि। यह स्वप्न महारानी मरुदेवीने रात्रिके पिछले पहरमें देखे थे; और इनके अंतमें एक महान बैलको मुखमें प्रवेश करते हुए देखा था। प्रातःकाल उठकर नित्य क्रियादिसे निर्वृत हो महारानी मरुदेवी महाराजा नाभिरायके पास गई थीं। महाराजाने उनको सिंहासनपर अपने निकट विठाया था; क्योंकि उस समय परदा नहीं थी और स्त्रियोंका पुरुष बड़ा सम्मान किया करते थे।

महाराजा नाभिरायने महारानीके स्वप्नका फल अवधिज्ञानसे जानकर बतलाया था कि 'तुम्हारे गर्भमें भगवान ऋषभदेव आए हैं।' आषाढ़ सुदी दूज उत्तराषाढ़ नक्षत्रको भगवान मरुदेवीके गर्भमें आए थे। इस समय देवोंने आकर अयोध्यापुरीमें उत्सव मनाया था और देवियोंने माताकी सेवा करना प्रारम्भ कर दी थी।

नौ मासके व्यतीत होनेपर उत्तरा नक्षत्रमें मरुदेवीने भगवानको जना था। उनके उत्पन्न होते ही चारोंओर घन वर्षा

होने लगी थी। विविध दिक्कुमारियोंने यथाविधि भगवानका समस्त उत्पत्ति समयका कर्म किया था। भगवानके जन्म प्रभावसे तीनों लोकके देवोंके आसन कम्पायमान हुये थे जिससे उन्होंने भगवानका जन्म हुआ जानकर महोत्सव मनाया था। इन्द्रने अयोध्यामें आकर इन्द्राणी द्वारा बालक भगवानको मंगाया। उनके रूपराशिको देखनेके लिए उसने एक हजार नेत्र बनाए पश्चात् हाथीपर बैठाकर वह उन्हें मेरु पर्वतपर ले गया। इस समय अन्य देव भगवानपर चमर छत्र लगाए साथ२ चल रहे थे। मेरुपर्वत पर पांडुकवनमें एक रत्नमई पांडुकशिला है उसपर भगवानको विराजमान किया था और क्षीरसमुद्रके जलसे उनका अभिषेक किया था। पश्चात् इन्द्रने वस्त्राभूषण पहिनाकर भगवानको अयोध्या वापस लाकर मात पिताके सुपुर्द किया, जिन्होंने भी विशेष उत्सव मनाया था। इन्द्रने उस समय नृत्य गान भी किया था।

भगवान ऋषभदेव धर्मके सबसे पहिले बतलानेवाले थे, इसलिए इन्द्रने उनका नाम "वृषभनाथ" रक्खा था। इसके अतिरिक्त इनके गर्भमें आनेके पहिले माताने स्वप्नोंमें सबसे अखीर एक बैल देखा था, इसलिए इनके मातापिता भी इन्हें वृषभ कहकर पुकारा करते थे। भगवानकी बाल्य अवस्थामें देवदेवियां उनकी सेवा किया करतीं थीं। भगवान बालक बड़े ही सुन्दर और सौम्य थे। वे जन्मसे ही मतिज्ञान (मानसिकज्ञान) श्रुतज्ञान (शास्त्रज्ञान) और अवधिज्ञान (पूर्व जन्म आदिकी बातें जानना) इन तीन ज्ञानोंके धारक थे। बालकपनेमें देवगण इनके साथ बालरूप धारकर खेल करते थे।

"भगवान् ऋषभ स्वयंभू थे। स्वयंज्ञानी थे,‡ उन्होंने बिना पढ़े ही सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया था। ये बड़े यत्नसे संसारका निरीक्षण करते थे और योग्यतापूर्वक कार्योंका सम्पादन करते थे। भगवानकी युवावस्थाकी चेष्टाएं परोपकारके लिये होती थीं। और उनसे प्रजाका पालन होता था। वे अनुपम बलशाली और दृढ़-तासे कार्योंको करनेवाले थे। समयको निरर्थक नहीं जाने देते थे। भगवान् ऋषभ गणितशास्त्र, छन्दशास्त्र, अलंकारशास्त्र, व्याकरण

‡ हिन्दुओंके भागवतमें इन्हें नाभिराजका पुत्र बतलाया है और लिखा है कि 'जन्म लेने ही ऋषभदेवके अङ्गमें सकल भगवतलक्षण झलकते थे। सर्वत्र समता, उपशम, वैराग्य, ऐश्वर्य और महैश्वर्यके साथ उनका प्रभाव दिन २ बढ़ने लगा। वह स्वयं तेज: प्रताप, शक्ति उत्साह, कांति और यश प्रभृति गुणसे सबे प्रधान बन गए।"

विश्वकोष भाग २।

डॉ० स्टीवेन्सन साहब इस ही बातको लक्ष्यकर कहते हैं कि:—

"The Second point in the Jain traditions which I imagine has a historical basis, is the account they give the religious practice of Rishabha, the first of their Tirthankaras. He, too, like Mahavira, is said to have been a Digambara. In the Brahmanical Puranic records, he is placed second on the list of Kings, in one of the regal families, and said to have been father to that Bharat from whom India took its name. He is alsosaid, in the end of his life, to have abandoned the world, going about every where as a naked ascetic. It is so seldom

शास्त्र, चित्रकला, लेखन प्रणालीका अभ्यास करते थे। * और उन्होंने ही सबसे पहिले इन बातोंको अन्य लोगोंको बताया था। 'वे मनोरञ्जनके लिये गाना बजाना और नाटक एवं नृत्यकी कलाओंका भी उपयोग करते थे। देव बालकोंके साथ विविध खेल भी खेला करते थे। ये जलक्रीडा–तैरना–आदि भी करते थे।'

जब भगवान युवा हो गये तब महाराज नाभिने इनसे विवाह करनेके लिये कहा। भगवानने अपने आदर्शचरित्रसे भविष्यमें विवाहादिक मार्ग चालू करनेके लिए अपनी सम्मति केवल 'ॐ' शब्द कहकर दी। तदनुसार कच्छ महाकच्छ नामक दोनों राजाओंकी परम सुंदरी नन्दा, सुनन्दा नामक दो कन्यायोंसे आपका विवाह हुआ था। 'रानी नन्दाके समस्त भरत-क्षेत्रको आनन्द देनेवाला प्रथम चक्रवर्ती भरत नामका पुत्र और महा मनोहर ब्राह्मी नामकी कन्या उत्पन्न हुई। और सुनन्दाके महाबलवान बाहुबलि और परमसुंदरी सुंदरी नामकी कन्या हुई। भरत और ब्राह्मीसे अतिरिक्त रानीनंदाके वृषभसेन आदि अंठानवे पुत्र अन्य हुये और ये समस्त पुत्र तद्भव मोक्षगामी थे। भगवानने अपने समस्त पुत्र पुत्रियोंको अक्षर विद्या, चित्र विद्या, गान विद्या

---

that Jains and Brahmans agree, that I do not see how we can refuse them credit in this instance, where they do so." (Kalpasutra Intro. XVI.)

डॉ० साहबने यहां ब्राह्मण पुराणोंमें जो उक्त प्रकार जैन पुराणकी पुष्टि की है उसको काबिल विश्वास बतलाया है।

* बा० सूरजमलका "जैनइतिहास" भाग १ पृष्ठ ३३–३४

और गणित आदि विद्याओंमें अतिशय निपुण कर दिया था। * और उनके कर्ण छेदन, मुंडन, यज्ञोपवीत संस्कार आदि भी भगवानने किए थे।

भगवान ऋषभदेवने सबसे पहिले अपनी दोनों कन्याओंको ज्ञान दान दिया था। एक दिवस उन्होंने 'उन्हें पढ़नेके लिये मौखिक उपदेश देकर विद्याका महत्व बताते हुए अ, आ, इ, ई, आदि स्वरोंसे अक्षरोंका ज्ञान प्रारम्भ कराया और इकाई, दहाई आदि गिन्ती भी पढ़ाना प्रारम्भ किया। भगवान ऋषभदेवके चरित्रमें अपने पुत्रोंको पढ़ानेका वर्णन कन्याओंके पढ़ानेके बाद आया है। इससे मालूम होता है कि भगवानने स्त्री शिक्षाका महत्व जगतमें प्रगट करनेको ही ऐसा किया होगा। अपने इस आदर्श कार्यमें भगवानने यह गूढ़ रहस्य रक्खा और प्रगट किया है कि पुरुष शिक्षाका मूल कारण स्त्री शिक्षा ही है। दोनों कन्याओंके लिए भगवानने एक " स्वायंभुव " नामक व्याकरण बनाया था और छंदशास्त्र, अलंकार शास्त्र आदि शास्त्र भी बनाए थे।' ×

नाभिरायके समय जो धान्य एवं फलादि स्वयं प्रकृतिक रूपमें उत्पन्न हुए थे, वह भी नष्ट होने लगे और उनमें रस आदि भी कम होने लगा। तब प्रजा राजा नाभिके पास आकर अपने इस दुःखको उनसे कहने लगी। राजा नाभिने उसको भगवान ऋषभके पास भेज दिया। समस्त प्रजाको भूखसे व्याकुल देख अतिशय दयालु भगवान ऋषभने उन्हें दिव्य आहार दे क्षुधाजन्य त्राससे

* श्री हरिवंशपुराण सर्ग ९ श्लोक २१-२४

× सूरजमल कृत जै० इ० भाग १ पृष्ठ ३६।

बचाया। "जीविकाके लिये अनेक उपाय बतलाए। धर्म, अर्थ, कामके साधनोंका उपदेश दिया। प्रजाके कल्याणार्थ उपायोंके साथ साथ असि, मषि, कृषि, विद्या, वाणिज्य और शिल्प, इन षट्कर्मोंका भी उपदेश दिया। ÷ गौ भैंस आदि पशुओंका संग्रह कर उनके पालनेकी विधि बतलाई। सिंह आदि दुष्ट जीवोंसे बचनेका उपाय बतलाया। भगवानके सौ पुत्रोंने और प्रजाने उस समय अनेक कला शास्त्र सीखे और सैकड़ोंको शिल्पी बनाया। शिल्पकलामें प्रवीण कारीगरोंने उस समय भरतक्षेत्रकी पृथ्वीपर अनेक पुर, गांव, घर, खेट, खर्वट बनाए। उस समय भगवानने क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन तीन वर्णोंकी स्थापना की। जो वणिकवृत्ति व्यापार करनेवाले थे उन्हें वैश्य किया और जो शिल्पविद्यामें चतुर थे–मकान आदि बनाना जानते थे, उनका वर्ण शूद्र ठहराया। षट्कर्मका उपदेश देकर भगवानने उस समय प्रजाको सुखी किया, उनकी बुद्धिमें नवीन युगका संचार किया। इसलिये उन्हें लोग कृतयुग कहने लगे।" *

भगवान ऋषभनाथके कहनेसे इन्द्रने जिन मंदिरों, देश, उपप्रदेश, नगर आदिकी रचना की थी। भगवानके समयमें

÷ इन्हीं कारणोंवश शायद हिंदुओंने आपकी अपने अवतारोंमें गणना की है। आपने लिपि विद्याका भी सबसे पहिले प्रचार किया था जैसे कि हिन्दी विश्वकोषके भाग १ में भी कहा है।

* श्री हरि०पु०-सर्ग ९ श्लोक ३३--४० हिन्दुओंकी मनुस्मृतिमें आपके विषयमें लिखा है:—

'दर्शयन् वर्त्मवीराणां सुरासुरनमस्कृतः। नीतित्रयस्य कर्ता यो युगादौ प्रथमो जिनः॥

ही पूर्वोल्लिखित ५२ देशोंकी रचना की गई थी। इन देशोंमें कहीं जलकी सिंचाईसे खेती होती थी, और कहीं जल वृष्टिके आधारपर ! इस समय प्रत्येक देशके राजा भी नियत कर दिए थे। उस समय ऐसे भी देश थे जहां भील, लुटेरे, शिकारी आदि शूद्रोंका राज्य था। इन बातोंके साथ २ निम्नके छोटे बड़े गांवकी रचना आदिके वर्णनसे हम उस प्रारंभिक समयकी सभ्यताका भी अन्दाजा कर सक्ते हैं जो वैदिक सभ्यतासे प्राचीन एवं उसकी जड़ थी।

उस समय ग्राम आदिकी रचनाका क्रम इस प्रकार थाः—

"राजधानी प्रत्येक देशके मध्यमें बनाई गई थी। जिनमें कांटोंकी बाढ़से घिरे हुए मकान बनाये गये थे और किसान व शूद्र रहते थे. ऐसे सौ घरोंको छोटागांव और पांचसौ घरोंका बड़ा गांव कहलाता था। छोटे गांवकी सीमा एक कोशकी और बड़े गांवकी सीमा दो कोशकी. स्मशान, नदियों, बंबूल आदि कांटेदार वृक्षों व पर्वत और गुफाओंसे की गई थी। गांवोंको बसाना उनका उपभोग करना, गांवनिवासियोंके लिये नियम बनाना, गांवोंकी आवश्यक्ताओंको पूरी करना आदि कार्य राज्यके आधीन रखे गये। जिन स्थानोंपर मकानात हवेलियां, कई बड़े २ दरवाजे बनाए गए और प्रसिद्ध पुरुष बसाए गए उन स्थानोंका नाम नगर पड़ा। नदियों और पर्वतोंसे घिरे स्थानोंको खेट नाम दिया और चारों-ओर पर्वतोंसे घिरे स्थानोंको खर्वट नाम दिया। जिन गांवोंके आसपास पांच सौ घर थे उन्हें मंडब नाम दिया गया। समुद्रके आसपासवाले स्थानोंको पत्तन और नदीके पासवाले गांवोंको

द्रोणमुख संज्ञा दी । राजधानियोंके आधीन आठ आठ सौ गांव, द्रोणमुख गांवोंके आधीन चार चार सौ और खर्वटोंके आधीन दो दो सौ रक्खे गये ।

उस समय भगवानने शूद्रोंके दो भेद किये । एक क़ारु और दूसरा अकारु । धोबी, नाई वगैरह कारु कहलाते थे । इनसे भिन्न अकारु । कारु शूद्रोंके भी दो भेद किये गये, एक स्पृश्य–छूने योग्य । दूसरे अस्पृश्य–नछूने योग्य । स्पृश्योंमें नाई वगैरह थे और जो प्रजासे अलग रहते थे वे अस्पृश्य कहलाते थे ।

'इस प्रकार कर्मयुगका प्रारम्भ भगवान ऋषभने आषाढ़ कृष्णा प्रतिपदाको किया था । इसलिये वे कृतयुग–युगके करनेवाले हैं । और इसी लिये उस समय प्रजा आपसे विधाता, स्रष्टा, विश्वकर्मा आदि कहा करती थी ।

'इस युगके प्रारम्भ करनेके बाद भगवान ऋषभ सम्राट् पद्वीसे विभूषित किये गये और उनका राज्याभिषेक किया गया । सब क्षत्रिय राजाओंने भगवानको अपना स्वामी बनाया । व महाराजा नाभिरायने भी भगवानको राज्यका स्वामी बनाया था । सम्राट् पद पानेके अनंतर भगवानने व्यापारादिके व शासनके नियम बनाए । भगवानने क्षत्रियोंको शस्त्र चलानेकी शिक्षा स्वयं दी थी और वैश्योंके लिये परदेशगमनका मार्ग खुला करनेके लिये स्वयं विदेशोंको गये और स्थलयात्रा व जलयात्रा समुद्रयात्रा प्रारम्भ की ।' * भगवानने उस समय विवाहके नियम भी बना दिये थे ।

* सु० म० का जै० इ० भाग १ पृष्ठ ३९-४१.

प्रकटकर दिया था कि शूद्र शूद्र कन्यासे, वैश्य वैश्य और शूद्र कन्यासे एवं क्षत्रिय क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र कन्यासे विवाह करे।× इससे प्रकट है कि उस समय केवल वर्णभेद था, जातिभेद नहीं था। और यह भी एक विशेष उल्लेखनीय वात थी कि अपने वर्णोंकी आजीविका छोड़कर दूसरे वर्णोंकी आजीविका कोई नहीं कर सक्ता था। भगवानकी दण्डनीति भी उनके पिताके समान हा, मा और धिक्कार थी, क्योंकि आपके समयकी प्रजा भी बड़ी सरल, शांत और भोली थी। भगवानने हरि, अकंपन, काश्यप और सोमप्रभ, इन चार राजाओंको एक एक हजार राजाओंके ऊपर नियत किया और इनका पद महामण्डलेश्वर रक्खा। इन्होंने ही क्रमसे हरि, नाथ, उग्र और कुरुवंशोंकी स्थापना की थी। उस समयका कर भी अति अल्प था। 'सबसे पहिले भगवानने ईखके रसको संग्रह करनेका उपदेश दिया था, इसलिए भगवान और उनका वंश इक्ष्वाकु कहलाया। भगवानने अपने पुत्रोंको भी राज्य बांट दिया था। इस प्रकार भगवानका यह सम्पूर्ण समय परोपकारमें गया था।

हमारे उपर्युक्त वर्णनकी पुष्टिमें हिन्दूओंका भागवत विशेष साक्षी रखता है। उसमें भगवान ऋषभनाथका वर्णन करीब २ जैनमतानुसार दिया हुआ है। 'भागवतके मतसे ऋषभदेव भगवानका आठवां अवतार है (१-३-१३) वह लोक, वेद, ब्राह्मण

× श्री जिनसेनाचार्यने ही आदिपुराणमें ऐसा उल्लेख किया है; यद्यपि कथा ग्रन्थोंके अध्ययनसे विदित होता है कि भगवान महावीरजीके समय तक अनुलोम विवाह चारों वर्णोंमें ही परस्पर चालू थे। ऊंच-नीचका कम ख्याल था।

और गो सबके परम गुरु थे और उन्होंने सकल धर्मके मूल गुह्य ब्राह्म धर्म (आत्मधर्म) का ब्राह्मण दर्शित मार्गके अनुसार उपदेश दिया था (९–६–अ०) ब्रह्मावर्तमें ब्रह्मर्षियोंकी सभाके बीच उन्होंने +ब्राह्मधर्मका प्रचार किया (९–४–१६–१९) राजर्षि भरत उन्हीं ऋषभदेवके पुत्र थे। उन्हींके नामपर इस देशका नाम भारतवर्ष रखा गया है। वह ब्रह्माक्षरका जप करते थे (९–८–११)।" * इस वर्णनसे प्रकट है कि ऋषभदेवने ही प्रथम रूपमें लौकिक और धार्मिक विद्याओंकी सृष्टि की थी, जिसके महत्व और उत्तमता उक्त वर्णनसे प्रगट हैं।

"कदाचित् भगवान सभामंडपमें सिंहासनपर विराजमान थे, इन्द्रकी नृत्यकारिणी नीलांजसा उनके सामने नाच रही थी। नाचते नाचते ही वह तत्काल विला गई और उसे विलीयमान देख भगवानको वैराग्य हो गया।" ×भगवानको वैराग्य हुआ जानकर लौकांतिक देवोंने आकर भगवानकी स्तुति की और भगवानके वैराग्य चिंतवनकी सराहना की। तत्क्षण ही उन्होंने युवराज भरतका राज्याभिषेक कर दिया और युवराज पद कुमार बाहुबलिको प्रदान कर दिया। इतनेमें ही इन्द्रोंने स्वर्गसे आकर भगवानका अभिषेक किया और खूब उत्सव मनाया। तब भगवान अपने माता पिता आदि परिवारसे पूछकर तपके लिये वनकी ओर चल दिये। वे कतीस पैडतक तो पैदल ही चले पश्चात् लोगोंके कहनेपर वे पालकीमें

+ ब्राह्म धर्मका भाव आत्म धर्म है अर्थात् आत्माके ज्ञानको बतलानेवाली विद्या। ब्राह्मण दर्शितसे भी आत्मज्ञानसे प्रदर्शित ज्ञान समझना चाहिए। * विश्वकोष भाग २ पृष्ठ ६२।

× श्री हरिवंशपुराण सर्ग ९ श्लोक ४७।

सवार हो लिये और उदयाचल पर्वतपर सूर्यकी शोभा धारण करने लगे। '+ 'चैत्र वदी नौमीके दिन भगवान् ऋषभने सिद्धार्थ नामक वनमें जो अयोध्यासे न तो दूर था और न बहुत पास ही था, जाकर सब कुटुम्बियोंकी आज्ञापूर्वक दिगम्बर दीक्षा धारण की। दीक्षा लेते समय सब परिग्रहोंका त्याग किया। भगवानके साथ चार हजार राजाओंने दीक्षा धारण की थी। दीक्षा लेनेके बाद इन्द्रोंने भगवानकी पूजा की। भगवानने पहिले छह मासका उपवास धारण करनेकी प्रतिज्ञा कर तप करना प्रारम्भ किया, तप धारण करते समय भगवानको मनःपर्यय ज्ञानकी उत्पत्ति हुई। इस ज्ञानसे मनकी गति जानी जाती है। जिन राजाओंने भगवानके साथ दीक्षा ली थी। वे दुःखोंको सहन न कर सके और फलफूल खाने लगे-उनसे भूँख न सही गई। महाराजा भरतके डरसे ये शहरोंमें नहीं जाते थे, इन लोगोंने भिन्न२ भेष धारण कर लिये थे। किसीने लंगोटी लगा ली थी, कोई दंड लेकर दंडी बन गया था, किसीने तीन दंडोंको धारण किया था, इसलिये उसे लोग त्रिदण्डी कहते थे। इन लोगोंके देव भगवान् ऋषभ ही थे।'*

इसी समय भगवानके पौत्र मरीचिने तपसे भ्रष्ट हो सांख्य-मतके सदृश एक धर्मकी स्थापना की थी और योग शास्त्रोंकी रचना की थी। भगवानने नग्न दिगम्बर दीक्षा ही धारण की थी, यह हम पहिले लिख चुके हैं। हिन्दुओंके भागवतमें भी इसी बातकी पुष्टि है। उसमें लिखा है कि "ऋषभदेवने अपने ज्येष्ठपुत्र भरतको राज्य सौंप परमहंस धर्म....के लिये संसार त्याग किया था।

+ पूर्व पृष्ठ १३२। * जै० इति० भाग १ पृष्ट ४४-४५

उसी समय उन्होंने दिगम्बर वेशमें....ब्रह्मावर्तसे पैर बढ़ाया। ऋषभदेवने मौनवृत पकड़ा था।....ऋषभदेव स्वयं भगवान और कैवल्यपति ठहरते हैं। योगचर्या उनका आचरण और आनन्द उनका स्वरूप है।" +

'भगवानने छह महीने तक बड़ा ही कठिन तप किया। भगवानकी जटाऐं बढ़ गईं थीं। भगवानकी शांतिका प्रभाव वनके पशुओंपर यहां तक पड़ा कि वे आपसी विरोधभाव भी छोड़ चुके थे। छह मास पूरे होजानेपर भगवान आहारके लिये नगरोंमें गये परन्तु आहार देनेकी विधि उस समय कोई नहीं जानता था।

+ भागवत ५-४, ५, ६ अ० भागवतमें यद्यपि भगवानकी जन्मादि सम्बन्धी ठीक लिखी है परन्तु आपसी प्रतिस्पर्धाके कारण उनके धर्मके विषयमें उटपटांग लिखा है। जैनियोंकी श्वेताम्बर सम्प्रदाय भी ऋषभदेवके दिगम्बरत्वको स्वीकार करती है। यद्यपि वह अन्तिम तीर्थंकरको छोड़कर शेषको सवस्त्र बतलाती है, जो यथार्थताके विपरीत जिसके विषयमें द्वितीय भागमें विचार किया जायगा। भगवान् ऋषभ और महावीरजीके विषयमें उसके मान्य ग्रन्थ 'कल्पसूत्र' में स्पष्ट लिखा है कि यह दोनों तीर्थंकर अचेलक-नग्न दिगम्बर थे। डॉ० स्टीवेन्सन उस अंशका अनुवाद इस प्रकार करते हैं:—

"1. What then, is meant by Achelakka? He who is without Chela, that is to say, clothing, is Achelakka and the abstract noun Formed from that it is Achailakya (Unclothedness). Achailakya is the attribute of Rishabha and Mahavira alone of all the principal yatis." (Kalpasutra p. 3.)

अतएव यह प्रत्यक्ष प्रगट है कि भगवान् ऋषभने दिगंबरी दीक्षा धारण की थी।

भगवानका अभिप्राय न समझ कोई कुछ और कोई कुछ भगवानके सन्मुख रखता था, परन्तु भगवान उनकी ओर देखते तक न थे। अंतमें जब करीब सात माहसे कुछ दिन ऊपर होगये तब वैशाख सुदी तीजको कुरुजांगल देशके राजा सोमप्रभके छोटे भाई युवराज श्रेयांसने जातिस्मरण-पूर्वभवका ज्ञान हो जानेसे विधि पूर्वक इक्षुरसका आहार दिया। इससे उस राजाके यहां इन्द्रों व देवोंने पंचाश्चर्य किए थे। एकदिन भगवान विहार करते२ पुरिमताल नामक नगरके पासवाले शकट नामक वनमें जापहुंचे और वहां पर ध्यान धारण किया। भगवान्के बड़े भारी तपश्चरणसे चार घातिया कर्मोंका नाश हुआ और भगवानको केवलज्ञान, सर्वज्ञत्व प्राप्त हुआ। जिस दिन भगवान सर्वज्ञ हुए वह दिन फागुन वदी एकादशीका दिन था। भगवानके केवलज्ञानका समाचार प्राकृतिकरीतिसे स्वयं ही स्वर्गमें पहुंच गया। इतने बड़े महात्माके सर्वज्ञ होनेपर जगतमें प्राकृतिक रीतिसे विलक्षण परिवर्तन हो जाना आश्चर्यजनक नहीं कहला सक्ता। अतएव भगवान्के सर्वज्ञ होते ही स्वर्गोंमें बाजे स्वयमेव बजने लगे, घंटोंकी ध्वनि हुई, पृथ्वीपर चारोंओर चार चार कोश तक सुकाल हो गया, छहों ऋतुओंके फलफूल एक ही समयमें उत्पन्न हो गये आदि कई आश्चर्यजनक घटनाएं हुईं। स्वर्गमें भगवानके सर्वज्ञ होनेके चिन्ह प्रगट होते ही उसी समय इन्द्रोंने अपने आसनसे उठकर भगवानको नमस्कार किया और देवोंकी सेनाके साथ बड़ी सजधजसे भगवानकी पूजा करनेको आए।*

* जै० इति० भाग १ पृष्ठ ४५-४६

"राजा भरतने उस समय अपने पुत्रकी उत्पत्ति, चक्ररत्नकी प्राप्ति और भगवानको केवलज्ञानकी प्राप्ति, ये तीन शुभ समाचार सुने, परंतु वे सबसे पहिले कुरुवंशीय, भोजवंशीय आदि अनेक राजा और चतुरंग सेनासे वेष्टित हो भगवान् ऋषभदेवकी वंदनाके लिये गये और वहां भगवानकी भक्तिभावसे पूजा की। तालपुरके स्वामी राजा वृषभसेन भी समवशरणमें आये और संयम धारण कर भगवानके प्रथम गणधर हो गए। अतिशय धीर भगवान ऋषभदेवकी पुत्री ब्राह्मी और सुंदरीने अनेक स्त्रियोंको दीक्षा धारण कराई और समस्त आर्यिकाओंकी अग्रेसरी हो गईं"।........भगवानके समवशरणमें मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविका, यह चार प्रकारका संघ मौजूद था। चारों निकायके देव थे। भगवानके समवशरण (सभाग्रह) की रचना बारह योजन पर्यंत (इन्द्र द्वारा) की गई थी। भगवानके समवशररणमें बड़े २ बारह कोठे थे। उनमें भगवानकी दाहिनी ओर पहिले कोठेमें तो मुनिराज विराजमान थे, दूसरे कोठेमें कल्पवासी देवियां, तीसरेमें आर्यिका, श्राविका और अनेक स्त्रियां,* चौथेमें ज्योतिषी देवोंकी देवियां, पांचवीं सभामें व्यंतर देवोंकी स्त्रियां, छठीमें भवनवासी देवोंकी देवांगना, सातवेंमें भवनवासी देव, आठवींमें व्यं-

*स्त्रियोंको जो हेयदृष्टिसे देखते हैं उन्हें ध्यान देना चाहिए कि स्वयं भगवानकी सभामें स्त्रियोंका इतना सम्मान था कि उनको साधारण पुरुषोंसे पहिले स्थान दिया गया था। साथ ही मनुष्योंके कोठेमें ऊंच नीचका कोई भेद नहीं किया है। इससे प्रगट है कि चाण्डाल आदि जीवोंसे भी द्वेष नहीं किया जाता था। उनको भी भगवानके उपदेशको सुननेका हक प्राप्त था।

तर देव, नवमी सभामें ज्योतिषी देव, दशवीं सभामें कल्पवासी देव, ग्यारहवींमें चक्रवर्ती आदि मनुष्य और बाहरवीं सभामें तिर्यंच बैठे।"†

भगवान् ऋषभदेव इस ही समवशरणके मध्य वेदिकामें सिंहासनके ऊपर अधर विराजमान रहते थे और उनके ऊपर तीन रत्नमय छत्र लगे थे एवं चौसठ चमर ढुलते थे। भगवानकी इस सभामें किसीके लिए आने जानेकी रोकटोक नहीं थी। हरकोई वहां आकर भगवानका उपदेश सुन सक्ता था। पशु भी वहांपर धर्मोपदेश सुनते थे! गर्जकि भगवानकी दृष्टिमें साधारण और विशेष सब जीव समान थे और भगवानका दिव्य प्रभाव इतना था कि पशुओंने अपने आपसी कुदरती वैरको भी छोड़ दिया था। भगवानका उपदेश बिना इच्छाके ही प्रतिदिन तीनवार हुआ करता था और उसको समस्त प्राणी अपनी २ भाषामें समझ लेते थे। उसका उच्चारण अक्षररहित; बिना दांत और तालु आदिमें क्रिया हुए ही होता था। भगवानके उपदेशको सुनकर धारण करनेवाले गणधर होते हैं। भगवानके मुख्य गणधर वृषभसेन थे। सभामें प्रत्येक मनुष्य प्रश्न कर सक्ता था। किसीके लिए कोई मनाई नहीं थी। इसी सभामें भगवानने आत्माके स्वाभाविक धर्म जैनधर्मका प्रकाश किया था। सार्वभौम चक्रवर्ती नृप भरतने भगवानसे सबसे अधिक प्रश्न किए थे। कुरुदेशके राजा सोमप्रभ और श्रेयांश भी दीक्षित होकर भगवानके गणधर हो गए थे।

शकट वनसे उठकर भगवान्‌ने फिर विहार किया था और कुरुजांगल, कौशल, सुदन, पुंड्र, चेदि, अंग, वंग, मगध, अंध्र,

---

†हरि० पु० सर्ग ९ श्लोक २१२-१३-१६-२०-२१-२२।

कलिंग, भद्र, पञ्चाल, मालव, दशार्ण, विदर्भ आदि अनेक देशोंमें विहार कर अपने उपदेशामृतसे जगतका कल्याण किया था। भगवान् जहां जहां जाते थे वहां वहां ऊपर कहे मुताविक समवशरण वन जाता था। जब भगवान विहार करते थे तब उनके आगे२ धर्म चक्र, और देवोंकी सेना चलती थी। आकाशसे जय जय शब्द होते जाते थे। भगवानके चरणोंके नीचे देवगण कमल रचते जाते थे। भगवान् पृथ्वीसे बहुत ऊंचे अधर चलते थे।

भगवान्के भरत और बाहुबलि पुत्रोंको छोड़कर बाकी सब पुत्रोंने दीक्षा लेली थी। भरतने ब्राह्मण नामक चौथा वर्ण भी स्थापित किया था। उसके विषयमें उन्होंने भगवानसे पूछा था और जाना था कि चतुर्थकालमें तो इस वर्णसे लाभ होगा परन्तु पंचमकालमें यह वर्ण जैनधर्मका द्रोही बन जायगा।

'भगवान ऋषभदेवका शिष्य यों तो विश्व ही था' परन्तु आपकी सभाका चतुर्विधि संघ इस प्रकार थाः—

८४ गणधर, ४७५० चौदहपूर्वके पाठी मुनि, ४१५० शिक्षक मुनि, ९००० अवधिज्ञानी मुनि, २०००० केवलज्ञानी मुनि, २०६०० विक्रियाऋद्धिके धारक साधु, १२७५० मनःपर्यय ज्ञानके धारक मुनि, १२७५० वादी साधु=कुल ८४०८४ मुनि और ३५०००० ब्राह्मी आदि आर्यिकाएं ३००००० श्रावकके वृतोंको धारण करनेवाले श्रावक, ५००००० सुवृता आदि श्रावकाएं। केवलज्ञान होनेपर भगवान अनंतज्ञान, अंनन्तदर्शन, अनंतसुख और अनन्तवीर्यकर युक्त होगये थे। भगवानने एक हजार चौदह दिन कम एक लाख पूर्वतक समवश-

चण सभामें उपदेश दिया था। जब आयुके चौदह दिन शेष रह गये तब उपदेश देना बंद हुआ और आप (कैलासपर्वत) पर पद्मासन लगाकर शेष कर्मोंका नाश करने लगे। यह दिन पौष सुदी १५ का था। आनन्द नामक पुरुष द्वारा भगवानका कैलाशपर आगमन सुन भरत चक्रवर्ती वहां गया और चौदह दिनों तक भगवानकी सेवा की थी।' *

"जिस समय भगवान ऋषभदेव अनेक मणिमयी शिलाओंसे रमणीय कैलाशपर्वतपर विराजे × उस समय उनके साथ २ दस हजार योगी और भी गये। भगवानने वहांपर मनोयोग आदि तीनों योगोंका निरोध किया, वेदनीय नाम आदि चार अघातिया कर्मोंको जड़से उखाड़ा और कल्पवृक्षोंकी मालाओंको धारण करनेवाले देवोंसे पूजित हो 'जहां सुख ही सुख है ऐसे' मोक्ष स्थानपर जा विराजे।" +यह दिन माघ मासके कृष्णपक्षकी चतुर्दशीका था। भगवानके मोक्ष चले जानेपर देवोंने आकर 'निर्वाण कल्याणक' नामका पांचवा कल्याणकोत्सव मनाया और भगवानके शरीरका चंदनादि सुगंधित द्रव्यों द्वारा अग्निकुमार जातिके देवोंके मुकुटकी अग्निसे दाह किया। भगवानके शरीरका जहां दाह किया था उसकी

---

* जै० इति० भाग १ पृष्ट ५२।

× हिन्दुओंके प्रभासपुराणमें व्यासजीने भगवान ऋषभनाथको जो उनके यहां अवतार माने गए है, कैलाशपर्वतसे मुक्त हुआ लिखा है।

यथा:—कैलाशे विमले रम्ये वृषभोऽयं जिनेश्वरः।
चकार स्वावधारं च सर्वज्ञः सर्वगः शिवः॥

+ हरि० पु० सर्ग १२ श्लोक ८१।

दाहिनी ओर गणधरादि साधुओंके शरीरका दाह किया और बांई-ओर केवलज्ञानियोंके शरीरका दाह किया और उत्सव मनाया। इन तीन प्रकारके महापुरुषोंके दाहसे तीन प्रकारकी अग्निकी स्थापना करनेका देवोंने श्रावकोंको उपदेश दिया, और प्रतिदिन पांचवी प्रतिमा तकके धारक श्रावकोंको अग्निमें होमादि करनेकी *आज्ञा दी। भगवान ऋषभदेवके सबसे बड़े पुत्र भरत थे। ये चक्रवर्ती थे। इनका जन्म चैत्र कृष्ण नवमीके दिन उत्तराषाढ़ नक्षत्रमें हुआ था। भरत पहिले चक्रवर्ती और छहों खंडके स्वामी थे, इसलिये इन्हींके नाम पर आर्य लोगोंका रहनेका स्थान **भारतवर्ष** कहलाया। ×चक्रवर्ती भरत सर्वजीवित प्राणियोंमें विशेष बलवान थे। भरतने स्वयं भगवान ऋषभदेवसे शिक्षा प्राप्त की थी और वे मुख्यतः नीतिशास्त्रके प्रखर विद्वान थे। भगवानने जब तप धारण किया था तब इनको ही सम्राट बनाया था। महाराज भरतने दिग्विजय करना प्रारंभ किया था। उन्होंने सर्व देशोंपर अपना आधिपत्य जमा लिया था। उनने पूर्वमें अंग, वंग, कलिंग आदि, उत्तरमें काश्मीर उशीनर आदिको, पश्चिममें कच्छ आदिको और दक्षिणमें सिंहलद्वीपको विजय किया था। दिग्विजयमें सेनाका विशेष प्रबंध था। महाराजका रणवास भी साथ था। 'साथके मनुष्योंको ठहरनेके लिये कपड़ेके तम्बू लगाए गए थे। घोड़ोंकी

---

*जै० इति० भाग १ पृ. ५२

× हिन्दुओंके वराह पुराणमें भी ऐसा ही लिखा है। यथाः—तस्य भरतस्य पिता ऋषभः हेमाद्रेदक्षिणं वर्षं महद्भारतं नाम शशास। उनके अग्निपुराणमें भी ऐसा ही लिखा है।

घुड़साल भी कपड़ेकी ही बनाई गई थी। भरतके अतिंजय नामक रथके घोड़े जल और थल दोनों पर चलते थे। महाराज भरतने म्लेच्छ खंड पर भी अपना आधिपत्य जमा लिया था। उनकी सेनामें १८ करोड़ घोड़े, ८४ लाख हाथी, ८४ करोड़ पैदल सेना और ८४ लाख रथ थे। उनने छहों खंडपर अपना साम्राज्य फैला लिया था। भरतने अपनी एक प्रशस्ति हिमवन पर्वतकी ओर वृषभाचल पर्वतकी एक शिलापर लिखी थी। इस दिग्विजयमें भरतको साठ हजार वर्ष लगे थे। दिग्विजयसे लौटने पर भरत अयोध्याको लौटे परन्तु उनका चक्ररत्न नगरमें प्रवेश नहीं करता था। तब उन्होंने जाना कि मैंने अपने भाई बाहुबलीको अभी विजय नहीं किया है। बाहुबलि प्रथम कामदेव, परम सुंदर थे और भगवान ऋषभनाथके द्वितीय पुत्र थे और इनकी राजधानी दक्षिण दिशामें पोदनापुर थी। इन्होंने भरतकी आज्ञा शिरोधार्य नहीं की थी और अन्तमें दोनों भाइयोंमें युद्ध हुआ था। मंत्रियोंके कहनेसे सेनाओंका युद्ध नहीं कराया था। बाहुबलिने भरतको हराया। इसपर खिजकर भरतने उनपर चक्र चलाया, पर चक्रने भी उनको भरतका आत्मीय जान मारा नहीं। इतनेमें बाहुबलिको वैराग्य हो गया और उन्होंने दीक्षा लेली थी। उन्होंने दुर्धर तपश्चरण किया था। वे एक वर्षका आसन माढ़ एक स्थान पर ही तप तपते रहे थे, जिससे बनलतायें उनके शरीरमें लिपट गई थीं व सर्पोंने पैरोंके नीचे बामियां बना लीं थीं। जिस दिन बाहुबलीका एक वर्षका उपवास पूर्ण हुआ उसी दिन भरतने आकर पूजनकी जा की और उनको केवलज्ञानकी प्राप्ति हुई। जिससे

भरतने और देवोंने उनकी पूजा की थी। तब बाहुबलिने पृथ्वीपर विहार कर धर्मका उपदेश दिया और अन्तमें कैलाश पर्वतसे मोक्षको प्राप्त हुए।

बाहुबलीके दीक्षित हो जानेपर भरतने अयोध्यामें प्रवेश किया था और फिर वहां देवों एवं राजामहाराजाओं द्वारा भरतका राज्याभिषेक किया गया। इस समय भरतने बड़ा भारी दान किया था। भरतकी आज्ञामें ३२००० मुकुटबद्ध राजा और ३२००० ही देश थे और १८००० आर्यखंडके म्लेच्छ राजा आज्ञामें थे। भरतकी ९६००० रानियां थीं, उनमें मुख्य सुभद्रा थी। भरतके सेनापतिका नाम अयोध्य, पुरोहितका नाम बुद्धिसागर, गृहपतिरत्नका नाम कामवृषि और सिलावट रत्नका नाम चंद्रमुख, हाथीका नाम विजयपर्वत, घोड़ेका नाम पवनंजय था। भरतने अपनी लक्ष्मीका दान करनेके लिए ब्राह्मण वर्णकी स्थापना की थी। इनकी विभूति एवं सम्पदा अपूर्व थी। भरतको सोलह दुस्स्वप्न हुए थे जिनका भाव भगवान ऋषभदेवने भविष्यमें जैनधर्मकी हीनता बताया था।

भरत बड़े धर्मात्मा, भव्य और तपस्वी थे। उन्होंने कैलाशपर्वतपर रत्नमय बहत्तर जिनमंदिर बनवाये थे। उन्होंने दंडविधानमें भी परिवर्तन कर दिया था–भरतने प्राणदंड, देशनिकाला, कैद आदिकी सजाएं रक्खी थीं, व बडे न्यायी थे। उस समय समस्त प्रजा बड़े आनन्द भोगती थी।

एक दिन सम्राट् भरत दर्पणमें अपना मुख देख रहे थे कि उनको एक सफेद बाल नजर पड़ा, जिससे उनको अपना बुढ़ापा

आया जान पड़ा और उनको वैराग्य हो गया । अपने पुत्र अर्क-कीर्तिको उन्होंने राज्य देकर दीक्षा धारण की । भरतका वैराग्य गृहस्थावस्थासे ही इतना प्रबल था कि उन्हें दीक्षा लेते ही केवल-ज्ञान हो गया । हजारों वर्षोंतक सर्वज्ञरूपमें उपदेश देकर वे भी मोक्षको गए ।

इस समयके एक महामंडलेश्वर राजा जयकुमार थे । यह हस्तिनापुरके नरेश सोमप्रभके पुत्र थे। यह भरतके साथ दिग्विजयमें रहे थे । इनकी रानी काशी नरेश महाराज अकम्पनकी पुत्री सुलोचना थीं, जिन्होंने इनको स्वयंवरमें वरा था। कई वर्षों राज्य और भोग भोगकर दोनों राजा रानी साधुधर्मको स्वीकार कर गए। यह भगवान ऋषभदेवके एक गणधर हुए । महारानी सुलोचना मरकर स्वर्गको गईं ।

इनके अतिरिक्त हरिवंशके स्थापक महामंडलेश्वर राजा हरि, उग्रवंशका संस्थापक राजा काश्यप आदि प्रख्यात पुरुष उस समय हुए थे ।

भगवान ऋषभदेवके जमानेके उक्त वर्णनसे हमें उस अत्यन्त प्राचीन जमानेका हवाल मिल जाता है और हमको मालूम हो जाता है कि किस तरह प्रारम्भमें जैनधर्मके आदि प्रवर्तक भगवान ऋषभने जगतको सभ्यताका प्रथम पाठ पढ़ाया था । अब हम अगाड़ी अन्य अवशेष २३ तीर्थङ्करों एवं महापुरुषोंका वर्णन करेंगे।

चतुर्थ परिच्छेद ।

अवशेष तीर्थंकर और अन्य महापुरुष ।

पूर्व परिच्छेदमें हम कर्मभूमिकी प्रवृत्तिका वर्णन देख आए हैं। उस समयके जीवनकी सुगमता और सादेपनका दिग्दर्शन भी कर आए हैं। अब यहां उसके अगाडीका वर्णन करनेके लिये अवशेष तीर्थङ्करोंके समयोंका वर्णन करना पड़ेगा, जिससे हमको हमारी वर्तमान अवस्थाका ज्ञान प्राप्त होजायगा।

भगवान ऋषभदेवसे पचास करोड़ सागरके बाद दूसरे तीर्थ-ङ्कर अजितनाथ हुए थे। इनके समय तक भगवान ऋषभनाथके बतलाए हुए मार्गपर प्रजा चल रही थी। यह इक्ष्वाकु वंश और काश्यप गोत्रके नृपति जितशत्रुके यहां उत्पन्न हुए थे। इनकी माताका नाम विजयसेना था। यह ज्येष्ठ बदी अमावसके दिन अपनी माताके गर्भमें आकर महा शुदी दशमीको रोहिणी नक्षत्रमें अयोध्यामें जन्मे थे। युवा होनेपर आपका विवाह हुआ था। भोग भोगते हुए कदाचित आपको आकाशमें उल्कापात देखनेसे वैराग्य होगया। तदनुसार आपने दिगम्बर दीक्षा माघ सुदी नव-मीको धारण की थी। उस समय आपको मनःपर्ययज्ञान उत्पन्न हुआ था। छह मासके उपवासके बाद आपने ब्रह्मभूत राजाके घर आहार लिया था। पश्चात् १२ वर्ष तप तपकर आप पौष सुदी ११ के दिन केवलज्ञानी (सर्वज्ञ) हुए थे। सर्वज्ञ होनेपर आपने समवशरणके साथ विहारकर धर्मोपदेश दिया था। आपने चैत्र सुदी पञ्चमीके दिन मोक्ष लाभ किया था। आप सम्मेदशिख-

रसे मोक्ष पधारे थे। प्रत्येक तीर्थंकरकी भांति आपके भी पंचकल्याणक उत्सव आदि सर्व अतिशययुक्त बातें थीं। भगवान ऋषभके तीर्थकालमें जो राजा धर्मभ्रष्ट होगए थे, संभव है, उनका प्राबल्य इस अन्तरमें हो गया था, उसीके निवारण करनेके लिये ही इनकी तीर्थकी प्रवृत्ति हुई प्रतीत होती है। ऐसे ही अन्य तीर्थंकरोंकी भी समझना चाहिए। यथार्थ कारण उस अज्ञात जमानेके जानना अत्यन्त कठिन कार्य है।

भगवान अजितनाथके समयमें सार्वभौमराजा सगर, द्वितीय चक्रवर्ती थे वे भी मोक्षको गए थे। इनके पुत्र भागीरथ इनके उत्तराधिकारी हुए। इन्होंने भी अपने पुत्र वरदत्तको राज्य देकर शिवगुप्त मुनिके पास दीक्षा ग्रहण की थी। कैलाशपर्वत पर इनको केवलज्ञान प्राप्त हुआ था। उस समय देवोंने इनके चरणोंका प्रक्षाल किया था। यह प्रक्षाल-अभिषेक जल-गंगा नदीमें मिल गया था इस लिये गंगा नदी भागीरथीके नामसे प्रसिद्ध हुई। यह भी मोक्ष गए।

भगवान अजितनाथके मोक्ष जानेके बाद कई सागर बाद तीसरे तीर्थंकर संभवनाथ हुए थे। यह फागुण सुदी ८को गर्भमें आए थे और कार्तिक सुदी पूर्णिमाको अयोध्यामें जन्मे थे। आपके पिताका नाम राजा दृढ़रथराय और माताका नाम सुषेणा था। इनका भी वंश इक्ष्वाकु और गोत्र काश्यप था, यह भी तीन ज्ञानके धारक सर्व तीर्थंकरोंकी भांति थे, इनका भी विवाह हुआ था। इन्होंने एक दीर्घ काल तक राज्य भोगकर संसारका त्याग किया था। दो दिनके उपवासके बाद आपने श्रावस्तीके राजा सुरेन्द्रदासके यहां आहार किया था। चौदह वर्ष फिर तप करनेके बाद आपको

कार्तिक वदी चतुर्थीके दिन केवलज्ञान प्राप्त हुआ था। तत्पश्चात् विहार करके आपने धर्मोपदेश दिया था और चैत सुदी षष्ठीको सम्मेदशिखर पर्वतसे आप मोक्ष गए थे। आपके भी वह सब विशेष बातें हुईं थीं जो पहिलेके तीर्थंकरोंके हुईं थीं।

इसके दश करोड़ सागरके बाद चौथे तीर्थंकर अभिनन्दनका जन्म हुआ था। भगवान अभिनंदन वैशाख सुदी छठको माता सिद्धार्थके गर्भमें आकर माघ सुदी बारसके दिन जन्मे थे। आपके पिता संवर इक्ष्वाकु वंशके काश्यपगोत्री अयोध्याके राजा थे। युवा होनेपर आपने राज्य प्राप्त किया था और नीतिपूर्वक राज्य करके आपने भी माह सुदी बारसको दीक्षा धारण की थी। दो दिनके उपवासके बाद अयोध्यामें इन्द्रदत्त राजाके यहां आहार लिया था। पौष सुदी चौदसके दिन अठारह वर्ष तप तपकर आप केवलज्ञानी हुए थे। फिर विहार और धर्मोपदेश देकर वैशाख सुदी छठको आप सम्मेदशिखरसे मोक्ष पधारे थे। आपके भी तीन ज्ञान जन्मसे होना, देवोंका पंचकल्याणक मनाना आदि विशेष बातें सब तीर्थंकरोंकी तरह हुईं थीं।

पांचवें तीर्थंकर सुमतिनाथ श्रावण सुदी दोजको अयोध्याके राजा मेघरथकी रानी मंगलादेवीके गर्भमें आकर चैत्र सुदी ११को उत्पन्न हुए थे। आपने राज्य पाकर अपनी पत्नीके साथ भोग भोगकर वैशाख सुदी नौमीको दीक्षा धारण की थी। दो दिनका उपवास करके आपने सौमनसपुरके पद्मभूपके यहां आहार लिया था। बीस वर्ष तपश्चरण करने पश्चात् आपको चैत्र सुदी ग्यारसके दिन केवलज्ञान प्राप्त हुआ था। आपने विहार करके चैत्र सुदी

ग्यारसको सम्मेदशिखरसे मोक्ष लाभ किया था। आपके भी वह सर्व दिव्य बातें और घटनायें हुई थीं जो सर्व तीर्थंकरोंके होती हैं।

छठवें तीर्थंकर पद्मप्रभु थे। यह कोशांबी नगरीके राजा मुकुटवरकी रानी सुषीमाके गर्भमें माघ वदी छठको आए थे और कार्तिक कृष्णा त्रयोदशीको तीनों ज्ञान सहित आपका जन्म हुआ था। आप पट्टवन्ध राजा थे और विवाहित थे। आपने कार्तिक वदी तेरसको एक हजार राजाओं सहित दीक्षा धारण की थी। वर्द्धमान नगरके राजा सोमदत्तने आहार दिया था। छः मास घोर तपश्चरण किया। पश्चात् चार घातिया कर्मोंका नाश कर आप केवलज्ञानी हुए थे। समस्त आर्यखण्डमें विहार कर दिव्यध्वनि द्वारा उपदेशामृत पिला फागुन वदी चतुर्थीके दिन आपने सम्मेदशिखरसे निर्वाण प्राप्त किया था।

पद्मप्रभूके हजार क्रोड़ सागर बाद भगवान सुपार्श्वनाथका जन्म हुआ। राजा सुप्रतिष्ठकी रानी पृथ्वीषेणाके गर्भमें भादों वदी छठको आकर जेठ सुदी बारसको बनारसमें जन्मे थे। आपने दीर्घकाल तक राज्यभोग किया। पश्चात् दीक्षा ग्रहणकर (जेठ सुदी १२ को) आपने दो दिनका उपवास किया था। सोमखेट नगरके राजा महेन्द्रदत्तके यहां आपने प्रथम आहार लिया था। पश्चात नौ वर्ष तप तपा, तब आपको फागुन वदी छठको केवलज्ञान प्राप्त हुआ। धर्मोपदेशसे संसारका हित करके आपने फाल्गुण वदी सप्तमीके दिन सम्मेदशिखरसे निर्वाण स्थानको प्राप्त किया। आपका उल्लेख हिन्दुओंके यजुर्वेदमें है यथाः—'ॐ सुपार्श्वमिन्द्रहवे'। सब तीर्थंकरोंकी भांति आपके संबंधमें भी सब बातें हुई थीं।

आठवें तीर्थंकर चन्द्रप्रभू चन्द्रपुरी (बनारसके निकट) के राजा महासेनके पुत्र थे। यह रानी लक्ष्मणाके गर्भमें चैत्र वदी पंचमीको आए थे। तब सब तीर्थंकरोंकी माताओंकी तरह रानी लक्ष्मणाने १६ शुभ स्वप्न देखे थे और सब तीर्थंकरोंके शुभागमन समय १५ मास पहिले जैसे इन्द्र रत्नवर्षा आदि करने लगते हैं वह सब शुभ कृत्य इनके सम्बन्धमें भी हुए थे। आपने विवाह करके एक दीर्घ काल तक राज्य भोग किया था। पश्चात् अपने पुत्र वरचंद्रको राज्य देकर सब तीर्थंकरों की तरह इंद्रोंद्वारा लाई गई विमला पालकी पर चढ़, वनमें पहुंचकर पौष सुदी एकादशीको दीक्षा धारण की थी। दो दिनका उपवास करने बाद आपने नलिन नामक नगरमें सोमदत्त राजाके यहां आहार लिया था। फिर तीन मास आपने तप किया जिसके कारण मिती फाल्गुण वदी सप्तमीको चार कर्मोंका नाश हुआ और भगवान केवलज्ञानी बने। पश्चात् आर्यखंडमें विहार करके फागुन सुदी सप्तमीको सब कर्मोंका नाश करके सम्मेदशिखरसे मोक्ष पधारे।

तिसके बाद बहुत काल व्यतीत होनेपर नौवें तीर्थंकर पुष्पदंत हुए। फागुन वदी नौमीके दिन आप गर्भमें आकर मार्गशीर्ष सुदी प्रतिपदाको काकंदीपुरमें जन्मे थे। वहांके राजा आपके पिता सुग्रीव थे। माता जयरामा थीं। पूर्वके तीर्थंकरोंकी भांति आप भी इक्ष्वाकु वंशके काश्यप गोत्री क्षत्री थे। राज्य भोग करके अपने पुत्र सुमतिको राज्य देकर आपने मिती मार्गशीर्ष सुदी पड़िवाके दिन दीक्षा धारण की और दो दिनका उपवास करके आपने सबलपुरमें पुष्पमित्र नामक राजाके यहां आहार लिया था। चार वर्ष तप

करनेपर मिती कार्तिक सुदी दूजके दिन भगवानको केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। देवोंने सब तीर्थंकरोंकी भांति इनका भी अन्य चार कल्याणकोंके अतिरिक्त ज्ञान कल्याणक मनाया। आप सब तीर्थंकरोंकी तरह तीन ज्ञानके धारक जन्मसीसे थे। आपके विषयमें भी सब विविध विशेष बातें हुई थीं। फिर सब देशोंमें विहार करके जब कुछ ही दिन आयुके बाकी रह गए तब आपकी दिव्यध्वनि बंद हुई। तब सम्मेदशिखर पर शेष कर्मोंका नाश करके भादों सुदी अष्टमीको मोक्ष पधारे।

दशवें तीर्थंकर भगवान शीतलनाथ राजा दृढ़रथ और रानी सुनंदाके पुत्र थे। चैत्र कृष्ण अष्टमीके दिन आप गर्भमें आकर माघ वदी बारसको भद्दलपुरमें जन्मे थे। वर्तमानमें यह नगर भेलसा नामसे ग्वालियर राज्यमें है। आपका विवाह हुआ था। राज्य करके आपने माघवदी द्वादशीको गृहत्याग दिगम्बर भेषमें तपश्चरण किया था। पश्चात् अरिष्ट नगरके राजा पुनर्वसुके यहां आहार लिया था, फिर तीन वर्ष तप तपकर मिती पौष वदी चतुर्दशीके दिन आप केवलज्ञानी हुए थे समवशरणके साथ विहारकर धर्मोपदेश देते हुए आप सम्मेदशिखर पर आन विराजे थे और वहांसे आसोज सुदी अष्टमीको आपने मुक्ति लाभ किया था। आपके भी जीवनमें वह सब बातें हुई थीं जो प्रत्येक तीर्थंकरके होती हैं। आपके जन्मके कुछ पहिलेसे धर्मका मार्ग बंद हो चुका था।

भगवान शीतलनाथके मोक्ष चले जानेके बाद ग्यारहवें तीर्थंकरके होनेके पहिले 'भद्दलपुरके मेघरथ राजाने दान करनेका विचार मंत्रीसे प्रकट किया। मंत्रीने शास्त्र, अभय, आहार, औषधि इन

चार दानोंके करनेकी सम्मति दी, परन्तु राजाने नहीं मानी और उनके पुरोहित भूतिशर्मा ब्राह्मणके पुत्र मुन्डशालायनने हाथी, घोड़ा, कन्या, सुवर्ण आदि दश प्रकारका दान ब्राह्मणादिको देनेकी सम्मति दी और यश व पुण्य आदिका लोभ बताया। गृहस्थों द्वारा रचित ग्रन्थोंमें इन दानोंकी विधि वतलाई तब राजाने दश प्रकारके दान दिये। इसी समयसे ब्राह्मण वर्ण जैन धर्मका द्रोही होने लगा और इसी समयसे चार दानोंके बजाय हाथी, घोड़े आदि दान शुरू हुआ था।'*

ग्यारहवें तीर्थंकर भगवान श्रेयांसनाथ जेठ वदी छठको माता नंदादेवीके गर्भमें आकर फागुन वदी ग्यारसको जन्मे थे। आपके पिता विष्णु सिंहपुरके राजा थे। आपके जन्मके पहिले और भगवान शीतलनाथके मोक्ष जानेके बहुत दिनोंबाद धर्मका मार्ग बंद हो गया था। उसको इन्होंने पुनः प्रगट किया। आप भी इक्ष्वाकु वंशके थे। राज्यभार अपने पुत्र श्रेयंकरको देकर आप मिती फागुन वदी ग्यारसके दिन दिगम्बर मुनि हो गए। चतुर्थ मनःपर्यय ज्ञान प्राप्त हो गया, जैसे तीर्थंकरोंको प्राप्त हो जाता है। दो दिनके उपवासके बाद सिद्धार्थपुरके राजा नंदके यहां आहार लिया था। दो वर्ष तप तपकर माघवदी अमावसके दिन मनोहर नामक वनमें आपको केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। फिर समस्त आर्यखंडमें समवशरण समेत विहार कर जब आयुमें एक माह शेष रहा तब आप सम्मेदशिखिरसे बाकी चार कर्मोंका नाश करके मिती श्रावण सुदी पूर्णमासीके दिन मोक्ष पधारे। आपके जीवनमें भी प्रत्येक तीर्थंकरकी भांति

* जै० इति० भाग १ पृष्ठ ११९

विशेष घटनाएं घटित हुईं थीं।

भगवान् श्रेयांसनाथके समयमें प्रथम प्रतिनारायण (चक्रवर्तीसे आधे राज्यके अधिकारी) अश्वग्रीव, प्रथम नारायण तृपृष्ठ और प्रथम बलदेव विजय थे। अश्वग्रीव बादमें तृपृष्टके आधीन हो गए थे। तृपृष्ट और बलदेव भाई भाई पोदनपुरके राजा प्रजापतिके पुत्र थे। तृपृष्ठका राज्य उनके पुत्र श्रीविजयको मिला। श्री विजयकी स्त्री ताराको विद्याधर हरकर ले गया था, जिसे युद्ध द्वारा श्री विजय वापस लाया। बलदेव मुनि हो मोक्ष गए।

भगवान् श्रेयांसके चउव्वनसागर बाद वासुपूज्य तीर्थंकर हुए इनके जन्मके (भगवान श्रेयांसके जन्मके पहिलेके समयसे कुछ अधिक) पहिलेसे धर्मका मार्ग बंद हो गया था। आषाढ़ वदी छटको भगवान अपनी माता जयावतीके गर्भमें आए और फाल्गुन वदी चतुर्दशीको अपने पिता राजा वसुपूज्यकी राजधानीमें आपका जन्म हुआ। आप इक्ष्वाकु वंशी काश्यप गोत्री थे। आप बालब्रह्मचारी थे। कुमार अवस्थाके बाद आपको वैराग्य हुआ और फाल्गुन वदी चतुर्दशीके दिन छहसौछियत्तर राजाओं सहित तप धारण किया। एक दिन उपवासकर दूसरे दिन महापुरके राजा सुन्दरनाथके यहां आपने आहार लिया और मिती माघ सुदी द्वादशीके दिन केवलज्ञान प्राप्त किया था। समस्त आर्यखंडमें धर्मोपदेश देकर मंदारगिरिसे आप भादों सुदी चतुर्दशीको मोक्ष गए। आपके जीवनमें भी सब विशेष बातें प्रत्येक तीर्थंकरकी भांति हुईं थीं।

भगवान वासुपूज्यके ही समयमें भोगवर्द्धनपुरके राजा श्रीध-

रके पुत्र तारक इस युगके द्वितीय प्रतिनारायण थे। यह बड़े अन्यायी थे, इनका युद्ध द्वितीयनारायण द्विपृष्टसे हुआ था, जिसमें इनकी मृत्यु हुई थी। इसी समय द्वितीय बल्देव अचल हुए थे। द्विपृष्ट और अचल द्वारिकाके राजा ब्रह्मके पुत्र थे।

पश्चात् भगवान वासुपुज्यके मोक्ष चले जाने बाद बहुत समय पश्चात् भगवान विमलनाथ हुए। आपके पिता सुकृतवर्मा कंपिला-नगरीके अधिपति थे। भगवान विमलनाथका जन्म रानी श्यामाके गर्भसे माघ सुदी चौदसके दिन हुआ था। आपका विवाह हुआ था और आपने राज्यसुख भोगकर माह सुदी चौथको दिगंबर दीक्षा धारण की थी। आपका प्रथम पारणा दीक्षा लेनेके तीसरे दिन बाद धान्यबटपुरमें राजा विशाखके यहां हुआ था। तीन मास तक आप संयमी रहे। पश्चात् मिती पूष वदी दशमीके दिन आप केवल-ज्ञानी हुए थे। देवनिर्मित समवशरणके साथ आपने आर्यखंडमें विहार किया था। पश्चात् सम्मेदशिखरसे आषाढ़ वदी अष्टमीको आप मुक्तिधामको प्राप्त हुए थे। भगवान विमलनाथके समयमें तीसरे नारायण स्वयंभू और सुधर्म नामक बलभद्र हुए थे।

इनके बहुत समय बाद १४ वें तीर्थंकर अनंतनाथने अयो-ध्यापुरीके इक्ष्वाकुवंशी और काश्यपगोत्री राजा सिंहसेनके यहां माता रेवतीके गर्भसे मिती जेठ वदी द्वादशीको जन्म लिया था। आपने कुमारावस्थाके बाद राज्यविभूतिका भोग दीर्घकाल तक किया था। पश्चात् मिती जेठ वदी द्वादशीके दिन आपने दीक्षा धारण की थी एवं आप दो मास तक संयमी रहे थे। दीक्षाके तीसरे दिन आपने वर्धमानपुरके राजा धर्मसिंहके यहां प्रथम आहार लिया था।

मिती चैत वदी अमावस्याके दिन आपको केवल ज्ञानका लाभ हुआ था। तत्पश्चात् आपने अपने विहार और धर्मोपदेशसे अज्ञान अंधकारको मेटा था। चैतकी अमावस्याके दिन आप सम्मेदशिखरसे मोक्ष पधारे थे। आपके विषयमें भी वह सब विशेष बातें समझना चाहिए, जो प्रत्येक तीर्थंकरके समय होती हैं। इनके समयमें चौथे नारायण पुरुषोत्तम और बलदेव सुप्रभ हुए थे।

पश्चात् भगवान धर्मनाथ १९वें तीर्थंकर हुए। इनके पिता रत्नपुरके राजा भानु थे, इनकी रानी सुव्रता आपकी माता थीं। इन्हींके गर्भसे आपका जन्म माघ सुदी तेरसके दिन हुआ था। आपने विशेष समय तक राज्य भोग करके मिती माह सुदी त्रयोदशीको दिगंबर दीक्षा धारण की थी। आपका प्रथम पारणा सौमनसपुरमें राजा सुमित्रके यहां हुआ था। आप एक मासतक संयमी रहे थे, पश्चात् मिती पौष सुदी पूर्णमासीको आपको केवलज्ञान उत्पन्न हुआ था। और आपने पृथ्वीपर विहारकर धर्मोपदेश दे मिती जेठ सुदी चौथके दिन सम्मेदशिखरसे मोक्षको प्राप्त किया था। सर्व तीर्थंकरोंकी तरह इनके भी विशेष बातें हुई थीं। इन्हींके समय पांचवे नारायण पुरुषसिंह और बलभद्र सुदर्शन हुए थे।

भगवान धर्मनाथके मोक्ष जाने बाद बहुत समय पश्चात् सोलहवें तीर्थंकर शांतिनाथ हुए। यह हस्तिनापुरके राजा विश्वसेनकी रानी ऐरादेवीके गर्भसे मिती जेठ वदी चौदसको जन्मे थे। युवावस्थाको प्राप्तकर पचास वर्षतक राज्य करके मिती जेठ वदी त्रयोदशीके दिन इन्होंने दीक्षा धारण की थी। आपका प्रथम पारणा मंदरपुरमें राजा धरममित्रके यहां हुआ था। आप सोलह वर्ष

तक संयमी रहे थे। पश्चात् मिती पूष सुदी एकादसीको आप केवलज्ञानी हुए थे। दीर्घकाल तक आर्यखंडमें विहार और धर्मोपदेश देकर आपने सम्मेदशिखरसे जेठ वदी चौदशके दिन मोक्षलाभ किया आपके जीवनमें भी वह सब बातें हुई थीं जो प्रत्येक तीर्थंकरके हुआ करतीं हैं। आप चक्रवर्ती राजा थे।

भगवान धर्मनाथ और शांतिनाथके अंतरालमें मघवा और सनत्कुमार नामक दो चक्रवर्ती राजा हुए थे।

सत्रहवें तीर्थंकर भगवान कुंथुनाथका जन्म वैशाख सुदी प्रतिपदाके दिन राजा सूर्यकी रानी श्रीमतीके गर्भसे हस्तिनापुरमें हुआ था। कुमारकालको व्यतीत करके आपने राज्य भोग किया था। पश्चात् मिती वैशाख शुक्ल पतिपदाको दीक्षा ग्रहण की थी। दीक्षाके तीसरे दिन आपने हस्तिनापुरमें राजा अपराजितके यहां पारणा लिया था। आप सोलह वर्ष तक संयमी रहे थे। पश्चात् मिती चैत सुदी तीजके दिन केवलज्ञान प्राप्त हुआ था। आपने समस्त आर्यखंडमें विहार और धर्मप्रचार किया था। पश्चात सम्मेदशिखरसे सर्व कर्म नाश कर आपने वैशाख सुदी पड़िवाके दिन मोक्षलाभ किया था। आप भी चक्रवर्ती राजा हुए।

अठारहवें तीर्थंङ्कर श्री अरहनाथजी हस्तिनापुरमें कुरुवंशीय राजा सुदर्शनके यहां रानी सुमित्रादेवीके गर्भमें फागुन सुदी ३को आकर मिती अगहन सुदी १४को जन्मे थे। आपने पाणि ग्रहण किया था। एवं ४२००० वर्ष राज्य भोग करके आपने मिती अगहन सुदी १० को दीक्षा धारण की थी। सोलह वर्ष संयममें बीते थे। दीक्षाके पश्चात् बेला करके आपने हस्तिनापुरमें राजा

मंदसेनके यहां प्रथम पारणा लिया था। पश्चात् मिती कार्तिक शुक्ल १२ को आपको केवलज्ञान प्राप्त हुआ था। फिर विहार और धर्मोपदेश देकर चैत्र कृष्ण अमावसके दिन आपने सम्मेदशिखरसे मोक्षलाभ किया था। आप भी चक्रवर्ती राजा थे। आपके विषयमें वह सब बातें हुई थीं जो प्रत्येक तीर्थंकरके होती हैं। आपके समकालीन राजा गोविंदराज थे।

भगवान अरहनाथके मुक्त गए पश्चात् एवं भगवान मल्लि-नाथके होनेके पहिले सुभूम नामके चक्रवर्ती हुए थे। एवं नारायण पुंडरीक और बलदेव नंदी भी हुए थे। पश्चात् भगवान मल्लिनाथ अपराजित विमानसे चयकर मिथिलापुरीमें अपनी माता रानी रक्षि-तादेवीके गर्भमें मिती चैत्र शुक्ला परिवाको आए थे। आपके पिता कुरुवंशीय राजा श्री कुम्भराय थे। मिती मगसिर शुक्ला एकादसीको आपका जन्म हुआ था। जन्म समय इन्द्रोंने सर्व तीर्थंकरोंके जन्म समयकी भांति उत्सव मनाया था। आप बाल ब्रह्मचारी रहे थे। राज्य करके आपने मिती अगहन सुदी ११ को दीक्षा ली थी। वेला करके चक्रपुरके राजा ऋषभ-दत्तके यहां पारणा लिया था। आपने छे दिन संयममें विताये थे। मिती पौष कृष्ण २ को आप केवली हुए थे। केवली होकर आपने पृथ्वीपर विहार किया था एवं धर्मका स्वरूप दर्शाया था। पश्चात् फाल्गुण शुक्ल पंचमीको आप सम्मेदशिखिरसे मुक्त हुए थे। आपके विषयमें भी वह सब बातें हुई थीं जो प्रत्येक तीर्थंकरके होती हैं। आपके समकालीन राजा सुलूमाराय थे। आपके पश्चात् मुनिसुव्रतनाथके पहिले महापद्म नामका सार्वभौम चक्रवर्ती

राजा हुआ था। एवं नारायणदत्त और बलिदेव नंदिमित्र हुए थे।

भगवान मुनिसुव्रतनाथ राजगृहीमें हुए थे। इनके पिता हरिवंशीय नृप सुमित्रनाथ थे। आप अपनी माता रानी पद्मावती-देवीके गर्भमें सावन वदी दोजको आकर उन्हींके कोखसे मिती वैशाख कृष्ण १०को जन्मे थे। आपने विवाह कर राज्य भोग किया था। पश्चात् मिती वैशाख कृष्ण १० को दीक्षित हुए थे। वेलाके मिथिलापुरमें राजादत्तके यहां आहार लिया था। फिर मिती वैशाख वदी नौमीको आपको केवलज्ञानका लाभ हुआ। आपने भी विहार और धर्मप्रचार किया था। फागुन वदी द्वादशीको सम्मेदशिखरसे मोक्षलाभ किया। आपके भी वह सब बातें हुई थीं जो प्रत्येक तीर्थंकरकी होतीं हैं।

इक्कीसवें तीर्थंकर भगवान नमिनाथ आश्विन कृष्ण दोजको अपनी माता वप्रादेवीके गर्भमें आए थे। और आषाढ़ कृष्णा दश-मीको आपका जन्म मिथिलापुरीमें हुआ था। आपके पिता इक्ष्वाकु वंशीय नृपति विजयरथ थे। आपने विवाह और राज्य किया था। आपके समकालीन राजा विजयराज थे। पश्चात् आषाढ़ कृष्ण १० को आपने दीक्षा ग्रहण की थी। और वेला करके प्रथम पारणा आपने राजगृही नगरमें सुनयदत्तके यहां लिया था। पश्चात् नौवर्ष संयमकालमें व्यतीत करके आपने मिती माघ शुक्ल एकादशीको केवलज्ञान प्राप्त किया था। फिर विहार और धर्मोप-देश देकर आपने वैशाख वदी चौदसको सम्मेदशिखिरसे मुक्तिलाभ किया था। आपके विषयमें भी वह सब बातें थीं जो प्रत्येक तीर्थं-करके होती हैं। भगवान नमिनाथके पहिले हरिषेण नामक चक्रवर्ती

सार्वभौमिक अधिपति हो चुके थे । और आपके बाद जयसेन नामक चक्रवर्ती हुए थे। लक्ष्मण नामक नारायण भगवान नमिनाथसे पहिले हो चुके थे ।

बावीसवें तीर्थंकर भगवान नेमिनाथ यदुवंशमें हुए थे। आप अर्जुन और कृष्णके समकालीन थे। आपके पिता नृप समुद्रविजय द्वारिकापुरीके अधिपति थे। आप रानी शिवदेवीके गर्भमें मिती कार्तिक सुदी ६ को अपराजित स्वर्गसे आए थे। एवं श्रावण सुदि ६ को आपका जन्म हुआ था। आपने न राज्य किया और न विवाह ही किया था। कुमारावस्थामें वासुदेव श्रीकृष्णचंद्रसे आपके प्रतिस्पर्धक क्रीड़ाएं होतीं थीं। उन क्रीड़ाओंमें भगवानके अतुल पराक्रम एवं बलका अनुभव करके श्री-कृष्णने एक विधि रची थी। उन्होंने भगवानका विवाह रचवाया था, परन्तु मार्गमें ही हिरण आदि निरापराध जंतुओंको बंधवा रक्खा था। भगवानने उधरसे निकलते हुए उन पशुओंके बिलबिलाहटके आर्तनाद दृश्य देखे जिनसे तत्क्षण उनको पशुओं पर दया आगई और वैराग्य रसका श्रोत उनके हृदयमें प्रोस्फुटित हो निकला, पशुओंको बन्धनमुक्त करके आपने अपने वस्त्राभूषण उतार डाले। एवं गिरनार पर्वतपर जाकर मिती श्रावण शुक्ल ६को दिगम्बर दीक्षाको अंगीकृत कर गए। उधर इनकी भावी पत्नी राजा उग्रसेनकी पुत्री राजमतीने इनके विरहको सहन न किया और वह भी इनके निकट आर्यिका होगई थी। एवं दुर्धर तप तपकर स्वर्गको गई थी। श्री गिरनारजी पर जिस गुफामें इन्होंने तपश्चरण किया था, उसमें इनकी एक प्राचीन प्रतिमूर्ति मौजूद है।

भगवानने दो रोजका उपवास करके प्रथम आहार द्वारावतीमें राजा वरदत्तके यहां लिया था। पश्चात् छप्पन दिन तक संयमी रह कर आपको कुवांर वदी परिवाके दिन केवलज्ञानका लाभ हुआ। तीनों कालकी और तीनों भवकी चराचर वस्तुका हस्तामलिकवत् ज्ञान आपको भी प्रत्येक तीर्थंकरकी भांति था। आपने समस्त आर्य खंडमें विहारकर धर्मामृतका पान करा मिती अषाढ़ सुदी सप्तमीको गिरनार पर्वतसे ही निर्वाण पदको प्राप्त किया था। आपके विषयमें भी वह सब बातें हुईं थीं जो प्रत्येक तीर्थंकरके होती हैं। आपका स्मरण हिन्दुओंके यजुर्वेदमें भी है। *

तेईसवें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथका जन्म ईसवी सन्से अनुमानतः ९४९ (वा ८७७ ?) वर्ष पहिले हुआ था। और भगवान नेमिनाथके मोक्ष जानेके बाद ८३७५० वर्ष बाद हुए थे। आपके पिता बनारसके अधिपति इक्ष्वाकुवंशीय श्री अश्वसेन थे। आप अपनी माता वामादेवीके गर्भमें मिती वैशाख वदी दोज को आए थे। और पौष वदि ११को जन्मे थे। आपकी आयु १०० वर्षकी थी। आप बाल ब्रह्मचारी थे। और आपने राज्य भोग भी नहीं किया था। कुमारावस्थामें ही दिगंबर मुनि हो गए

---

* वाजस्यनु प्रसव आवभूवेना च विश्वभुवनानि सर्वतः।
सनेमिराजा परियाति विद्वान् प्रजां पुष्टिं वर्धयनमानो॥ अस्मै स्वाहा।
—अध्याय ९ मंत्रे २५।

एवं प्रभासपुराणमें व्यासजीने लिखा हैः—
रैवताद्रौ जिनो नेमिर्युगादिर्विमलाचले।
ऋषीणां याश्रमादेव मुक्तिमार्गस्य कारणम्॥

थे । आपके समकालीन राजा अजितराय थे। आपके समयमें धर्मका ह्रास बिल्कुल हो चुका था । किसीको भी यथार्थ धर्मका ज्ञान न था । आपने फिरसे धर्मका यथार्थ रूप समझाया और लोगोंको यथार्थ सभ्यताका पाठ पढ़ाया था । मनुष्योंको हिंसावृत्तिसे बचाया था । आपकी ऐतिहासिकताको आजकलके इतिहासकार भी स्वीकार करते हैं ।* आपके समयमें भी वानप्रस्थ, आजीवक आदि सम्प्रदायोंका विशेष प्रचार था । एक समय आप विहार करते जा रहे थे कि एक वानप्रस्थ सन्यासीको आपने लक्कड़ सुलगाए पंचाग्नि तपते देखा था । उस लक्कड़के भीतर खुखालमें एक सर्प युगल था, जिसका ज्ञान उस कमठ नामक सन्यासीको न था । भगवानने सन्यासीको उनके अस्तित्वको बतलाया । पाखंडी कमठने भगवानकी बात पर विश्वास न लाकर उस लक्कड़को चीरा, तो देखा कि भगवानका कहना सत्य था । सर्पयुगल मृत्युके निकट थे इसलिए भगवानने उनको णमोकार मन्त्र सुनाया और वे मरकर धरणेंद्र और पद्मावती देवी हुए । मिथ्यात्वी कमठको इससे भी अपने कृत्यपर पश्चाताप न हुआ । और वह ऐसे ही कुतप तपकर व्यंतर देव हुआ । भगवान पार्श्वनाथ जिस समय अहिक्षेत्र (वर्तमान रामनगर जिला बरेलीमें) में दुर्धर तपश्चरण कर रहे थे, उस समय इस कुदेवने अपने पूर्व बैरके कारण घोर कष्ट देना प्रारंभ किए थे । परन्तु सर्पयुगलके जीव धरणेंद्र और पद्मावतीने भगवानका वह कष्ट

* देखो 'दी इन्साइक्लोपीडिया ऑफ रिलीजन एण्ड ईथिक्स' भाग ७ पत्र ४६५ । अथवा 'शार्ट स्टडीज इन दी साइन्स ऑफ कम्पेरेटिव रिलीजन्स' पत्र २४३-४ ।

निवारण किया था। इससे प्रकट है कि भगवान पार्श्वनाथके समयमें ही कुतापसी वानप्रस्थों आदिकी वाहुल्यता थी और उनका मिथ्या हट भी वड़ा जवरदस्त था। इस उपसर्गके दूर होनेपर भगवान पार्श्वनाथने चार घातिया कर्मोंपर विजय प्राप्त करली थी। और आप सर्वज्ञ होगए थे। यह चैत्र कृष्ण चतुर्थीका दिन था।

पश्चात् भगवानने समस्त आर्य खंडमें विहार किया था और धर्मका प्रचार किया था। दीक्षा ग्रहण करनेके वाद आपने दो दिनका उपवास करके काश्यकृतपुरमें धनदत्तके यहां प्रथम आहार लिया था। फिर चार मास संयमी रहे थे। तब केवलज्ञानी अथवा सर्वज्ञ हुए थे। सर्वज्ञताकी अवस्थामें आपने भव्य जीवोंको प्रतिबुद्ध किया था और धर्म मार्गपर लगाया था। पश्चात् श्रावण सुदी सप्तमीको सम्मेदशिखरसे मोक्षको प्राप्त किया था। इस हीके कारण सम्मेदशिखरको आजकल लोग "पारसनाथ हिल" कहते हैं। आपके भी वह सर्व विशेष वातें हुई थीं जो प्रत्येक तीर्थंकरके होती हैं। आपके समयमें ही अंतिम सार्वभौम राजा चक्रवर्ती ब्रह्मदत्त हुए थे। जिनका उल्लेख वौद्धग्रथोंमें भी मिलता है।

भगवान पार्श्वनाथके मोक्ष जानेके वाद आपकी शिष्य परम्परा द्वारा धर्मका मार्ग प्रवर्तता रहा था। इनके मुख्य गणधर स्वयंभू थे। परन्तु भगवान महावीरके जन्मके कुछ पहिलेसे वानप्रस्थादि मतोंकी फिरसे प्रधानता हो गई थी। आजीवक, अचेलक, आदि नए नए सम्प्रदाय निकल खड़े हुए थे, जिनकी बहुतसी वातें जैन धर्मके आचार नियमोंसे मिलती थीं। इस प्रकार भगवान ऋषभनाथके वादके तीर्थंकरों और प्रख्यात महापुरुषोंका वर्णन है।

अंतिम तीर्थंकर भगवान महावीरके वर्णनसे हमारा दूसरा भाग प्रारंभ होता है।

इस उक्त वर्णनसे हमको यह भी ज्ञात हो जाता है कि भगवान ऋषभनाथके समयसे ही उनके साथ दीक्षित राजा अज्ञानताके कारण धर्मभ्रष्ट हो गए थे, एवं कुलिंग (अपने मनोनुकूल) मतका आश्रय ले गए थे। और सम्राट भरतने जो विशेष उत्तम व्रती श्रावकोंका एक अलग ब्राह्मण वर्ण स्थापित किया था, वह अगाड़ी चलकर भगवान ऋषभनाथके कहे मुताबिक दशवें तीर्थंकर भगवान शीतलनाथके तीर्थकालमें शिथिलाचारी होकर आर्ष प्रणीत चार दानोंके वितरिक्तिमें घोड़ा, हाथी आदि आदि दश कुदानोंको लेने लग गया था और अपने इस विधानकी पुष्टिके लिए वह ग्रन्थ भी रचने लगा था। पीछे इसी ब्राह्मण वर्ग द्वारा भगवान मुनिसुव्रतनाथके मोक्ष चले जाने बाद उन अनार्य ग्रन्थोंमें हिंसा-वृत्तिका विधान करके यज्ञकाण्डका प्रचार किया गया था, जैसे कि पहिले प्रस्तावनामें दिखाया गया है। इस प्रकार क्रम कर ब्राह्मण वर्णने अपने ग्रन्थोंका संकलन किया और अपने मतका प्रचार किया। इस व्याख्याकी पुष्टिमें आजकलके प्रख्यात विद्वानोंकी मानी हुई बात पर्याप्त है; कि हिंदू धर्म सदैव समयानुसार अपना रंगढंग बदलता रहा है। (देखो Practi...) अस्तु, दूसरे भागमें प्रवेश करनेके पहिले हम आर्ष वेदों और आर्षवेदिक धर्मका भी दिग्दर्शन कर लेंगे।

तीर्थंकरोंके उक्त वर्णनको पूर्ण करनेके लिए निम्न बातें और ध्यान रखनेके लिए लिखी जाती हैं। अर्थात् 'भगवान ऋषभदेवके कुल यति चौरासी हजार थे, अजितके एक लाख, सम्भवनाथके

दो लाख, अभिनंदनके तीन लाख, सुमतिके तीन लाख वीस हजार, पद्मप्रभके तीन लाख तीस हजार, चंद्रप्रभके ढाई लाख, पुष्पदंतके दो लाख, शीतलनाथके एक लाख, श्रेयांसनाथके चौरासी हजार, वासुपूज्यके बहत्तर हजार, विमलनाथके अड़सठ हजार, अनंतनाथके छयासठ हजार, धर्मनाथके चौसठ हजार, शांतिनाथके बासठ हजार, कुन्थुनाथके साठ हजार, अरहनाथके पचास हजार, मल्लिनाथके चालीस हजार, मुनिसुव्रतके तीस हजार, नमिनाथके वीस हजार, नेमिनाथके अठारह हजार, पार्श्वनाथके सोलह हजार और महावीरके चौदह हजार थे।* ऋषभदेवके समवशरणमें तीनलाख पचासहजार आर्यिकाएं थीं। अजितनाथके समवशरणमें तीन लाख वीस हजार संभवनाथ, अभिनंदननाथ, सुमतिनाथ इन तीन तीर्थंकरोंके हर एकके समवशरणमें तीन २ लाख तीस २ हजार, पद्मप्रभके समवशरणमें चार लाख वीस हजार, सुपार्श्वनाथके समवशरणमें तीन लाख तीस हजार, चन्द्रप्रभ पुष्पदंत और शीतलनाथके प्रत्येकके समवशरणमें तीन २ लाख अस्सी २ हजार, श्रेयांसनाथके समवशरणमें एक लाख वीस हजार, वासुपूज्यके समवशरणमें एक लाख छै हजार, विमलनाथके समवशरणमें एक लाख तीनहजार, अनंतनाथके समवशरणमें एकलाख आठहजार, धर्मनाथके समवशरणमें बासठहजार चारसौ, शांतिनाथके समवशरणमें साठहजार तीनसौ, कुंथुनाथके समवशरणमें साठहजार साड़ेतीनसौ। अरनाथके समवशरणमें साठहजार, मल्लिनाथके समवशरणमें पचपन-हजार, मुनिसुव्रतनाथके समवशरणमें पचासहजार, और नमिना-

* हरि० पु० सर्ग ६० श्लोक ४५२-५६।

थके समवशरणमें पैंतालीसहजार थीं तथा नेमिनाथके समवशरणमें चालीसहजार और पार्श्वनाथके समवशरणमें अड़तालीसहजार और भगवान महावीरके समवशरणमें चौवीसहजार थीं।' * भगवान ऋषभदेवके प्रधान गणधर वृषभसेन थे, अजितनाथके सिंहसेन, संभवनाथके चारुदत्त, अभिनंदनके वज्र, सुमतिनाथके चमर, पद्मप्रभके वज्रचमर, सुपार्श्वनाथके बलि, चंद्रप्रभके दत्तक, पुष्पदंतके वैदर्भ, शीतलके अनगार, श्रेयांशके कुंथु, वासुपूज्यके सुधर्म, विमलके मंदरार्य, अनंतके जय, धर्मके अरिष्टसेन, शांतिके चक्रायुद्ध, कुंथुके स्वयंभु, अरके कुंथु, मल्लिके विशाखाचार्य, मुनिसुवृतके मल्लि, नमिके सोमक, नेमिके वरदत्त, पार्श्वनाथके स्वयंभू और महावीरके इंद्रभूति (गौतम) नामक गणधर थे। ये समस्त गणधर सातों प्रकारकी ऋद्धियोंके धारक और श्रुतज्ञानके पारगामी थे। जिस समय भगवान महावीर दीक्षित हुए थे उस समय उनके साथमें तीनसौ राजा दीक्षित हुए थे। पार्श्वनाथके साथमें छैसौ छै, मल्लिके साथ भी छैसौ छै, वासुपूज्यके साथ छैसौ, ऋषभके साथ चारहजार और शेष तीर्थकरोंके साथ हजार हजार राजा दीक्षित हुए थे।× इस प्रकार हमारा तीर्थकरोंका वर्णन पूर्ण होता है, केवल अंतिम तीर्थंकर भगवान महावीरका वर्णन करना अवशेष रह जाता है।

* हरि० पु० सर्ग ६० श्लोक ४३२-४१।

× हरि० पु० सर्ग ६० श्लोक ३४६-५१।

पंचम परिच्छेद।

आर्षवेद अर्थात् द्वादशाङ्ग वाणी।

आर्य्य जातिकी इस युगमें सबसे प्राचीन पुस्तकें वेद हैं। वे महान पवित्र और सर्वज्ञ वाक्य हैं। परन्तु वे आज हमको पूर्णरूपमें प्राप्त नहीं हैं। जो पुस्तकें आज वेदोंके नामसे विख्यात हैं वह यथार्थमें आर्ष वेद नहीं है, बल्कि ब्राह्मण वर्णके विविध समयके विशेष ऋषियों द्वारा संकलित विविध अनुष्ठान मंत्र एवं आत्मगान हैं। उनकी उत्पत्ति एकदम एक समय नहीं हुई थी, बल्कि समयानुसार जिस जिस बातमें वह ब्राह्मणधर्म आर्षप्रणीत सनातन आर्यधर्म (जैनधर्म) से अलग होता गया उस उस ही प्रकार वह अपनी आवश्यक्तानुसार अपने वेदों आदि+की उत्पत्ति अपने मतकी पुष्टिके लिए करता गया। इस विषयका उल्लेख प्रस्तावनामें किया जा चुका है।

वस्तु स्वरूपकी यथार्थ दृष्टिसे कहें तो आर्षवेद (जैनियोंकी द्वादशाङ्ग वाणी) अनादिकालसे हैं, क्योंकि सत्य अनादिनिधन है। और उसका कभी लोप नहीं होता। कहीं न कहीं वह अवश्य विद्यमान रहता है, चाहे प्रगटरूपमें हो अथवा अप्रगटरूपमें। वैसे इन आर्षवेदोंका निरूपण इस युगमें सर्व प्रथम भगवान् ऋषभदेवने किया था, जो सकल (सशरीर) परमात्मा थे अर्थात सर्वज्ञ थे। इसलिए

+ हिन्दुओंके वेद ईश्वरप्रणीत नहीं हैं यह बात बौद्धोंके करीब दोहजार वर्ष प्राचीन ग्रंथ 'तेविज्जसूत्त' से प्रमाणित है। वहां उन्हें ऋषिप्रणीत प्रकट किया है। (See The Dialogues of Buddha. P. 304)

आर्षवेद ही यथार्थमें भगवद्वाणी है, और वह किन्हीं अंशोंमें आज भी हमको प्राप्त है।

इन आर्षवेदोंकी गिनती मुख्यतया चारसे ही की जायगी अर्थात् वह चार ही हैं। (१) द्रव्यानुयोग, (२) करणानुयोग, (३) चरणानुयोग और (४) प्रथमानुयोग। यह सब श्रुति कहलाते हैं, क्योंकि यह सर्वज्ञ भगवानकी दिव्यध्वनि द्वारा कर्णगोचर होकर उन भगवानके मुख्य गणधर (जो अवधिज्ञानी होते हैं) द्वारा प्रतिपादित किए जाते हैं। 'श्रुति' अथवा दैवीवाणीका यथार्थरूप सामान्यतया इस प्रकार समझना चाहिए। (१) उसकी उत्पत्ति सर्वज्ञ तीर्थंकर द्वारा होनी चाहिए। (२) वह किसीके द्वारा खंडन न की जासके। (३) पूर्वापर विरोध रहित हो। (४) सर्व हितकारी हो। (५) यथार्थ तत्वोंके स्वरूपको वास्तविकरूपमें प्रकाशित करनेवाली हो। (६) और उसके द्वारा आत्मा सम्बन्धी समस्त शंकाएं निर्मूल हो जाती हों। उक्त आर्षवेद इसी प्रकारके हैं, और उनकी भाषा 'अर्ध-मागधी' समझनी चाहिए।

भगवान ऋषभनाथके निर्वाण होनेपर पचासलाख कोटि-सागर वर्षतक संपूर्ण श्रुतज्ञान अविच्छिन्नरूपसे प्रकाशित रहा। अनन्तर दूसरे तीर्थंकर अजितनाथ भगवान हुए। उनके पश्चात् भी श्रुतज्ञान अस्खलित गतिसे चलता रहा। एवं पीछे भगवान् पुष्पदंतके समय तक समस्त श्रुत अव्यवहित रूपेण प्रकाशित रहा। इनके पश्चात् भगवान शांतिनाथ तक श्रुत विच्छेद होता रहा था, परन्तु श्री शांतिनाथसे वर्द्धमान तीर्थंकर पर्यंत श्रुतका विच्छेद नहीं हुआ। कुशाग्रबुद्धि यतिवरों द्वारा ज्योंका त्यों प्रकाशित रहा।

भगवान् वर्द्धमानके गणधर श्री इन्द्रभूति (गौतमने) भगवानकी वाणीको तत्वपूर्वक जानकर उस श्रुतिकी अंग और पूर्वोमें युगपत् रचना की, जो अपने रूपमें भगवान वर्द्धमान (महावीर) के मोक्ष जाने बाद ६८३ वर्ष तक रही। (श्रीइन्द्रनन्द्याचार्य कृत श्रुतावतार कथासे) और वह गुरुपरम्परासे कंठस्थ ही चली आयी थी।* परन्तु पश्चात् कालदोषसे मुनिवरोंकी स्मरणशक्तिका अभाव होता गया, तब आगमज्ञानका बिल्कुल लोप हो जानेके भयसे ज्येष्ठ शुक्ला पंचमीको श्री भूतबलि मुनिने उनके अवशेष भागको षट्खंडागम नामसे लिपिबद्ध किया था।

* मि॰ चम्पतराय जैनने अपनी पुस्तक "Practical Path" में इस विषयमें लिखा है कि "जैन सिद्धान्त अर्थात् श्रुति (आर्षवेद) भी (ब्राह्म वेदोंके समान मनुष्योंकी स्मृतिमें रहे थे और वे लिपिबद्ध अंतिम तीर्थंकर भगवान महावीरके निर्वाण होनेसे कई शताब्दियोंके पश्चात् लि[illegible] गए थे। मोक्षमूलर साहब भी इससे सहमत हैं। उनका कहना है कि प्राचीन कालमें भारतवर्षमें साहित्य जबानी ही याद रक्खा जाता था। [illegible] साहबके मतानुसार 'भारतवर्षमें लिपि कलाकी जानकारी [illegible] शताब्दिके पहिलेसे विद्यमान थे', परन्तु उसका व्यवहार साहित्य[illegible] पहले तो [illegible] ही नहीं था और होता भी था तो कभी कभी।' [illegible] जे॰ एम॰ रॉबर्टसन साहिब लिखते हैं कि 'यह सब (साहि[illegible] प्राचीनकालसे जबानी ही एक दूसरेको बतला दिए जाते थे। और [illegible] अनावश्यकतासे कोई हानि भी नहीं हुई। अधिकतर प्राची[illegible] लिखित शास्त्र ऐसी शुद्धतासे दूसरोंको बतला दिये जाते थे, जैसे [illegible] लिखित [illegible]। यह इस कारणसे था कि पहिली अवस्थामें याद [illegible] प्रधान नियम था फिर दूसरीमें लिपिकर्त्ता द्वारा विशेष [illegible] टियां [illegible] बदाव बढ़ाव किये जाने लगे और कंठस्थ करनेकी रीति [illegible]। वर्तमान समय तक ब्राह्मणोंके बालकोंको वेद

यह आर्षवेद अथवा श्रुतज्ञान जैनियोंकी द्वादशांग वाणीमें प्रविष्ट है। और वह अंगप्रविष्ट (१२ अंगोंमें) और अंगबाह्य (१२ अंगोंके अतिरिक्त) के भेदसे दो प्रकारका है। इसकी भाषाके ६४ अक्षर हैं जिनमें ३३ व्यंजन और २७ स्वर हैं एवं २ मिश्रित रूप, १ अनुस्वार और १ विसर्ग है। (Mixed sounds, anusvâra, Visarga: hk, hkh, hp, hph. See S. B. J. Vol. II. P. 29). इन अक्षरोंका २, ३, ४से ६४ पर्यंत संयुक्ताक्षर परिमाण (२६४-१) है अर्थात् १, ८४, ४६, ७४, ४०,

कंठस्थ उसी प्रथानुसार कराये जाते हैं। जैनियोंमें भी सन्तानकी प्रथम शिक्षा भगवत्स्तोत्रोंके कंठस्थ करानेसे प्रारंभ होती है। पहिले ही पहिल जैन बालकोंको 'पंचकल्याणक मंगल पाठ' कंठस्थ कराया जाता है। कहीं कहीं तो जैन बाइबिल-तत्वार्थसूत्र और प्राकृत पूजाएँ कंठस्थ कराई जातीं हैं। सेजर साहबके द्राविड़ ज्ञान प्राप्तिके वर्णनमें इस विषयका उल्लेख है कि "बहुतसे लोग द्राविड़ (Dravid) रीत्यानुसार कितनी ही कविताऐं कंठस्थ रखते थे। उनमेंसे कितनेक विद्यार्थी अवस्थामें २० वर्ष तक रहते थे। तो भी गार्हस्थ्य कार्योंमें लिपिका आश्रय लिया जाता था। तब यह मनुष्य समाजमें एक साधारण कार्य था, और जैनी भी उससे पृथक् नहीं थे, जैसा कि अब प्रत्येक विद्वान मानता है। मि० बार्थके अनुसार जैन सिद्धान्त लिपि करनेके पहिले अनुमानतः १००० वर्ष पूर्वसे विद्यमान थे। इस विषयमें जैनियोंकी भी व्याख्या प्राप्त है और वह अपने आगमज्ञानके लिपिबद्ध होनेका समय भी बतलाते हैं।" यद्यपि वह लेखनकलाका प्रचार भगवान ऋषभदेवके समयसे हुआ बतलाते हैं। परन्तु समग्र श्रुत पूर्णरूपमें कभी लिपिबद्ध नहीं हुआ। वह यतिवरोंकी स्मृतिमें ही रहा। यह बात "बृहत् जैन शब्दार्णव" भाग १ पृष्ठ ४१ पर अंकित है। तथा श्वेताम्बर विद्वान प्रो० बनारसीदास भी इससे सहमत हैं। (देखो माधुरी वर्ष ३ पृष्ठ)।

७३, ७०, ९९, ५१, ६१९ । यही श्रुतके सम्पूर्ण अक्षर समझना चाहिए । परमागमके मध्यम पदकी १६, ३४, ८३, ०७, ८८८से इन कुल अक्षरोंको विभक्त करनेसे हमें इन अंगोंके पदोंकी संख्या मालूम होजाती है सो ११, २८, ३९, ८०, ००९ है । अवशेष ८०१०८१७९ अंग बाह्यके अक्षरोंकी संख्या है । यह अङ्ग वाह्य १४ प्रकीर्णकोंमें विभक्त हैं जो वैकालिक, उत्तराध्ययन आदि हैं ।

द्वादशाङ्ग निम्न प्रकार हैं ।

(१) आचाराङ्गमें मुनिधर्मके चारित्र सम्बन्धी नियमोंका पूर्ण विवरण है । इसमें १८००० मध्यमपद हैं ।

(२) सूत्रकृताङ्गमें धार्मिक क्रियायोंका और अन्य धर्मोंकी क्रियायोंके अन्तरका वर्णन है । इसमें ३६००० मध्यमपद हैं ।

(३) स्थानाङ्गमें एक या अधिक स्थानोंका वर्णन है अथवा जीव, पुद्गल आदि द्रव्योंका संख्यापेक्षया वर्णन है । जैसे जीव द्रव्य एक है और वही चेतनाशक्तिकी अपेक्षा सर्व जगह है । और उसकी सिद्धावस्था वा संसारावस्थाकी अपेक्षा वह दो प्रकारका है । इसमें ४२००० म०पद हैं ।

(४) समवायाङ्गमें द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावकी अपेक्षा जो समानताएं उत्पन्न होतीं हैं उनका वर्णन है । जैसे द्रव्यकी अपेक्षा धर्म और अधर्म एक हैं (दोनों द्रव्य हैं)। ऐसे ही समझना चाहिए। इसमें १६४००० मध्यमपद हैं ।

(५) व्याख्याप्रज्ञप्तिमें शिष्यों द्वारा पूछे गए प्रश्नोंका तीर्थं-कर भगवानद्वारा प्रतिपादित उत्तरोंका वर्णन है।इसमें २,२८,००० मध्यमपद हैं ।

(६) ज्ञातृकथाङ्ग वा धर्मकथाङ्गमें ९ पदार्थ, जीव आदिके स्वभावका वर्णन और भगवानसे पूछे गए गणधरोंके प्रश्नोंके उत्तर हैं। इसके ५,५६,००० मध्यमपद हैं।

(७) उपासकाध्ययनाङ्गमें गृहस्थ श्रावककी ११ प्रतिमाओंका वर्णन है अर्थात् गृहस्थोंके चारित्र सम्बन्धी नियमों आदिका वर्णन है। इसमें ११,७०,००० म० पद हैं।

(८) अन्तकृतदशाङ्गमें उन १० मुनियोंका वर्णन है जो २४ तीर्थंकरोंके प्रत्येकके समयमें होते हैं और दुर्धर तपश्चरण कर अपनेको सम्पूर्ण कर्मोंसे मुक्त कर लेते हैं। इसमें २३,२८,००० मध्यमपद हैं।

(९) अनुत्तरोत्पादकदशाङ्गमें उन १०–१० मुनियोंका वर्णन है जो प्रत्येक तीर्थंकरके समयमें होते हैं, और कठिन तपश्चरणका अभ्यास कर स्वर्गलोकके पांच अनुत्तर विमानोंमें जन्म लेते हैं। इस अंगमें ९२,४४,००० मध्यमपद होते हैं।

(१०) प्रश्नव्याकरणाङ्गमें कथनी, आक्षेपिणी (सत्यको प्रगट करनेवाली), विक्षेपिणी (भ्रमकी विध्वंशक), संवेदिनी (सत्यकी ओर प्रेमोत्पादक) और निर्वेदिनी (मोहसे पीछा छुड़ानेवाली) विद्याओंका वर्णन है। इसमें ९३,१६,००० मध्यमपद हैं।

(११) विपाकसूत्राङ्गमें कर्मके बन्ध, उदय और सत्ताका वर्णन है और द्रव्य, काल, क्षेत्र, भावकी अपेक्षा उनकी कठोरता और कोमलताका वर्ण है। अर्थात् इसमें कर्म सिद्धान्तका वर्णन कहा है। इसमें १८४,००,००० मध्यम पद हैं।

(१२) दृष्टिप्रवादाङ्गमें १०८,६८,५६,००५ मध्यम पद हैं

और यह पांच भागोंमें विभक्त है। अर्थात् ५ परिक्रमा, सूत्र, प्रथमानुयोग, १४ पूर्वगत और ५ चूलिका। इन पांच भागोंका वर्णन इस प्रकार है—

पांच परिक्रमाः—

(१) चन्द्रप्रज्ञप्ति परिक्रमामें चन्द्रमाकी चाल गति आदिका वर्णन है। इसके ३६,०५,००० मध्यम पद हैं।

(२) सूर्यप्रज्ञप्तिमें सूर्य सम्बन्धी सर्व वातोंका समावेश है। इसके ५०३००० पद हैं।

(३) जम्बूद्वीप प्रज्ञप्तिमें जम्बूद्वीपका संपूर्ण भौगोलिक वर्णन है। मध्यम पद ३२५००० हैं।

(४) द्वीपप्रज्ञप्तिमें समस्त द्वीप क्षेत्रों, समुद्रों, भवन, व्यंतर, ज्योतिष देवोंके स्थानों एवं जैन मंदिरोंके स्थानोंका विवरण है। इसमें ५२,३६,००० मध्यम पद हैं।

(५) व्याख्याप्रज्ञप्ति परिक्रमाके मध्य जीव, अजीव आदि नव पदार्थोंका संख्यात्मक वर्णन है। इसमें ५२,३६,००० मध्यमपद हैं।

सूत्र—इसमें ३६३ मिथ्या मतों (दर्शनों)का वर्णन है। उन मतोंके आत्मा सम्बन्धी सिद्धान्तों पर विवेचन किया गया है और आत्माका यथार्थ वैज्ञानिक स्वरूप दर्शाया गया है। इसमें ८८,००,००० मध्यम पद हैं।

प्रथमानुयोग—इसमें ६३ शलाका पुरुषों (महात्माओं) का वर्णन होता है। इसके ५०००, मध्यम पद होते हैं।

१४ पूर्वगतः—

(१) उत्पाद पूर्वमें जीव, पुद्गल, काल आदिके स्वभावका

वर्णन उनके विविध स्थानों और समयोंमें उत्पाद, ध्रौव्य, व्ययकी अपेक्षा कहा जाता है। इसके मध्यमपद १,००,००० होते हैं।

(२) अग्रायणी पूर्वमें ७ तत्व, ९ पदार्थ, ६ द्रव्यों और निश्चय एवं व्यवहारनयोंका वर्णन कथित होता है। इसमें ९६,००,००० म०पद होते हैं।

(३) वीर्यानुवाद पूर्वमें जीव, अजीव, दोनों, स्थान, समय, एवं भाव वीर्यकी शक्तियोंका और तपोवीर्यका स्वरूप तथा नरेन्द्र, चक्रधर, बलदेवके बलका वर्णन होता है। इसके ७,००,००० मध्यमपद होते हैं।

(४) अस्तिनास्तिप्रवाद पूर्वमें जीव एवं अन्य द्रव्योंके क्षेत्र, काल, भावादिकी अपेक्षा अस्तित्व और नास्तित्वका वर्णन होता है। एवं सप्तभंगीका कथन होता है। इसमें ६०,००,००० मध्यमपद होथे हैं।

(५) ज्ञानप्रवाद पूर्वमें मति, श्रुति, अवधि, मनःपर्यय और केवलज्ञान एवं कुमति, कुश्रुति और विभंगज्ञान इनका पूर्ण विवेचन होता है। इसके ९९, ९९, ९९९ म० पद होते हैं।

(६) सत्यप्रवाद पूर्व मौन और वचनालापका विवरण कहता है। विविध व्याख्यानको आदिका एवं १० यथार्थ वचनालापोंको प्रकट करता है। इसके १,००,००,००६ मध्यमपद होते हैं।

(७) आत्मप्रवादपूर्वमें निश्चय और व्यवहारनयोंकी अपेक्षा आत्माके कर्मोंके कर्ता और भोक्तापनेका विवरण होता है। एवं आत्मा संबंधी अन्य विशद बातोंका उल्लेख होता है। इसमें २६,००,००० मध्यमपद होते हैं।

(८) कर्मप्रवाद पूर्वमें कर्मकी विविध दशाओंका वर्णन है जैसे बंध, सत्ता, उदय, उदीरणा, अपकर्षण आदि। इसके १,८०,००,००० मध्यमपद हैं।

(९) प्रत्याख्यान पूर्वमें उन वस्तुओंका वर्णन है जिनको मनुष्यको सदैवके लिए अथवा किसी खास समयके लिए अपने शरीर-बल (संहनन) आदिकी अपेक्षा त्याग करना चाहिए। एवं ५ समिति, ५ गुप्ति आदिका भी वर्णन है। इसके ८४,००,०००, मध्यमपद होते हैं।

(१०) विद्यानुवाद पूर्वमें ७०० सामान्य विद्याओंका कथन है जैसे सकुनविद्या आदि और ५०० मुख्य विद्याओंका जिनका प्रारंभ ज्योतिष विद्यासे होता है। इसमें १,१०,००,०००,मध्यम पद होते हैं।

(११) कल्याणवाद पूर्वमें तीर्थकरों, चक्रधरों, वासुदेवों आदिके जीवनमें घटित विशेष महोत्सवों (कल्याणकों) का, एवं १६ प्रकारकी भावनाओंका जिनसे आत्मा तीर्थंकरपदको प्राप्त होता है, और नक्षत्र एवं सूर्य, चक्रादिके प्रभावका वर्णन है। इसमें २६,००,००० मध्यमपद होते हैं।

(१२) प्राणवाद पूर्वमें ८ प्रकारकी औषधिविद्या, भूत प्रेतों कृत पीड़ाओंको निवारणकी विद्या आदिका वर्णन है। इसमें १३,००,००,००० मध्यमपद होते हैं।

(१३) क्रियाविशाल पूर्वमें गानविद्‍ काव्य, अलंकार, ७२ कला, आदि एवं स्त्रियोंकी ६४ कला और उनकी ६४ क्रियायों तथैव भगवदुपासना आदि विविध क्रियायोंका वर्णन है। इसके ९,००,००,०० ध्यम पद होते हैं।

(१४) त्रिलोकबिन्दुसार पूर्व है। इसमें तीनों लोक, २६ परिक्रमाओं, ८ व्यवहार आदिका एवं मोक्ष प्राप्तिके मार्गका और उसके प्राप्त होनेपर सुख और शान्तिकी अवस्थाका वर्णन है। इसमें १२,५०,००,००० मध्यम पद हैं।

५ चूलिका:—

(१) जलगता चूलिकामें मंत्रों, आहुति आदिसे पानीको रोकने, पानीमें चलने अग्निको रोकने और अग्निमें घुसने आदिका वर्णन है। इसमें २,०९,८९,२०० मध्यम पद हैं।

(२) स्थलगता चूलिकामें उन मंत्रों और आहुतियोंका वर्णन है जिनके द्वारा मेरुपर्वत एवं अन्य देशोंमें जानेका एवं जल्दी चलने आदिका वर्णन है। इसके २,०९,८९,२०० मध्यम पद हैं।

(३) मायागता चूलिकामें हाथसे करिश्मे आदि दिखानेकी क्रियाओं एवं मंत्रोंका विवरण है। इसमें भी २,०९,८९,२०० मध्यम पद हैं।

(४) रूपगता चूलिकामें उन क्रियायोंका वर्णन है जिनके द्वारा शेर, हाथी, घोड़ा, आदिका रूप धारण करना आता हो। इसमें भी २,०९,८९,२०० मध्यम पद हैं।

(५) आकाशगता चूलिकामें उन मंत्रों, आहुतियों और तपोंका वर्णन है जिनके द्वारा मनुष्य आकाश आदिमें चल सक्ता है। इसके भी २,०९,८९,२०० मध्यम पद हैं।

अंगवाह्य श्रुतके ८,०१,०८,१७५ अक्षर हैं और वह १४ प्रकीर्णकोंमें विभाजित हैं।

(१) सामायिक प्रकीर्णकमें ६ प्रकारके सामायिक (आत्मचिं-

तवन, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, नाम, स्थापनाकी अपेक्षा) का विवरण है ।

(२) सस्तव प्रकीर्णकमें तीर्थंकरोंके जीवनकी पांच मुख्य वार्तों, उनके ३४ विशदवल, ८ प्रातिहार्य आदिका वर्णन है ।

(३) वन्दना प्रकीर्णकमें मंदिरों एवं अन्य उपासनाके स्थानोंका वर्णन होता है ।

(४) प्रतिक्रमण प्रकीर्णकमें उन क्रियाओंका वर्णन है जो दिन, रात पक्ष आदिके दोष दूर करनेके लिए आवश्यक हैं । एवं ईर्यापथ आदिके दोष दूर करनेका कथन है ।

(५) विनय प्रकीर्णकमें ५ प्रकारकी विनय आदिका विवरण कहा है ।

(६) कृतिकर्म प्रकीर्णकमें जिनभगवान, तीर्थंकर भगवानकी पूजा उपासना आदिकी, और अर्हंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, सर्वसाधु, जैन धर्म, जैन तीर्थंकरोंकी मूर्तियों, जिनवाणी, एवं जिन मंदिरोंको तीन शिरोनति, तीन प्रदक्षिणा, १२ दफे नमस्कार आदिकी क्रियाओंका पूर्ण विवरण है ।

(७) दशवैकालिक प्रकीर्णकमें चारित्रके नियमोंका एवं मुनियोंके भोजनोंकी शुद्धताका वर्णन है ।

(८) उत्तराध्ययन प्रकीर्णकमें साधुके चार प्रकारके उपसर्ग और २२ परीषहका एवं उनके फलका विवरण कहा है ।

(९) कल्प व्यवहार प्रकीर्णकमें मुनियोंकी यथार्थ क्रियाओंका और अयथार्थ क्रियाओंके पालनकी निर्वृत्तिके उपायका वर्णन होता है ।

(१०) कल्पाकल्प प्रकीर्णकमें उन पदार्थों, स्थानों वा विचा-

रोंका वर्णन है जिनको एक साधु द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावकी अपेक्षा काममें ला सक्ता है।

(११) महाकल्प संज्ञक प्रकीर्णकमें उन तीनों कालकी योग क्रियाओंका वर्णन है जिनको एक जिनकल्पी (अर्थात् इतना उन्नत चारित्री साधु जो अपनेको संघसे प्रथक कर लेता है) साधु शरीर आदिकी अपेक्षा उसके चहुंओरके द्रव्य, क्षेत्र, भाव, कालके, अनुसार उपयोगमें लाता है। और स्थविरकल्पी (साधुसंघका एक सदस्य) साधुके चारित्र नियमोंका भी वर्णन है, अर्थात् शिक्षाक्रम, साधुओंकी संभाल, आत्म-शुद्धि आदिका वर्णन है।

(१२) पुण्डरीक प्रकीर्णकमें दान, पूजा, तप, संयम आदिका वर्णन है, जिनसे आत्माको चतुर्निकायक देवस्थानोंमें जन्म मिलता है।

(१३) महापुण्डरीक प्रकीर्णकमें उन कारणों और व्रत उपवास आदिका वर्णन है जिनके फल स्वरूप आत्मा इन्द्र, प्रतीन्द्र आदि होता है।

(१४) निशिद्धिका प्रकीर्णकमें प्रमादसे जो विविध दोष उत्पन्न होते हैं उनसे शुद्ध होनेके उपाय कहे हुए हैं।

इस प्रकार आर्ष वेदोंका पूर्ण विवरण है जो 'श्रुत' कहलाते हैं। इनका पूर्ण रूपसें अथवा एक देशमें उपदेश करनेवालोंकी संख्या तीन प्रकार है अर्थात्:—

१. तीर्थंकर और केवली—सर्वज्ञ भगवान।

२. गणधर और श्रुत केवली, जो श्रुतिको पूर्ण रूपसे जानते हैं। वे अंग और पूर्वोंकी व्यवस्था करते हैं। इनके केवल ज्ञानको छोड़कर चारों प्रकारका ज्ञान होता है।

(३) आरातीय अर्थात् वह साधु जो श्रुतकेवलीकी तरह उपदेश और शिक्षा देते हैं । यह १० वैकालिक आदिके कर्ता भी होते हैं । इनको आचार्य भी कहते हैं ।*

हम पहिले ही कह चुके हैं कि यह आर्षवेद—श्रुति कुशाग्र-बुद्धि मुनिवरों द्वारा स्मृतिमें रक्खे जाते थे । परन्तु वड़े खेदका विषय है कि ज्यों ज्यों कालदोष बढ़ता गया त्यों त्यों स्मरणशक्तिका लोप होता गया और इस तरह पूर्ण रूपमें श्रुतिकी प्राप्तिका अभाव हो गया । भगवान महावीरके मोक्ष जाने बाद ६८३ वर्ष पश्चात् अवशेष श्रुति लिपिबद्ध कर लिये गये और उसीके अनु-सार विविध मुनिवर आचार्योंने ग्रन्थोंकी रचना की, जो आज हमको प्राप्त हैं, जिनका विषद वर्णन हम अगाड़ी करेंगे । सामा-न्यतया उनमेंके मुख्य २ ग्रन्थ इस प्रकार हैं:—

द्रव्यानुयोग—जयधवल, महाधवल, विजयधवल, (ताड़पत्र पर हस्तलिखित केवल मूलबद्रीमें) और गोम्मटसारजी, तत्वार्थसूत्रजी । तत्वार्थसूत्रजी दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों सम्प्रदायोंको मान्य हैं। इसलिए वास्तवमें यह 'जैन बाइबिल' कहा जासक्ता है ।

चरणानुयोग—नियमसार, रत्नकरण्ड श्रावकाचार आदि ।

कर्णानुयोग—त्रिलोकप्रज्ञप्ति, जम्बूद्विपज्ञप्ति, त्रिलोकसार आदि ।

प्रथमानुयोग—महापुराण, हरिवंशपुराण, पद्मपुराण आदि ।

इस प्रकार यह आर्षवेद (जैनवाणी) का विवरण है ।

---

* देखो "तत्वार्थसूत्रजी" S. B. J. Vol. II P. 28-38.

षष्ठम परिच्छेद।

आर्ष वैदिक धर्म अर्थात् जैनधर्म।

और उसकी सभ्यता।

अति प्राचीनकालमें आर्य्य लोगोंका धर्म वही था जिसका उपदेश आर्षवेद—श्रुति जैनवाणीमें मौजूद था। और जो अब जैनियोंके आर्ष ग्रन्थोंमें मिलता है। जैनियोंके वर्तमानमें उपलब्ध आर्ष आचार्य ग्रन्थोंका विषय लुप्तप्रायः श्रुतिका एक सत्यांश है। इसलिए उनकी यथार्थतामें कुछ संशय नहीं रहता। तिसपर भी उनमें वर्णित विषय बुद्धि ग्राह्य, वैज्ञानिक सत्य हैं। * यद्यपि हम देख चुके हैं कि यथार्थ ईश्वरीय आर्षवेद तो यतियोंकी स्मरणशक्तिके अभाव हो जानेसे लुप्त होगए थे, और उनका पूर्ण ज्ञान उपलब्ध नहीं रहा था परन्तु पश्चात्‌के विशेष यथार्थ ग्रन्थोंका आज उपलब्ध न होना भी कोई आश्चर्यजनक बात नहीं है क्योंकि हम जानते हैं

---

* इस विषयमें जर्मनीके प्रसिद्ध विद्वान मि० जॉन हर्टल कहते हैं कि "भारतीय सभ्यताका इतिहास लिखनेके लिए जैन कथाऐं बहुत ही अमूल्य सामिग्री हैं।" प्रसिद्ध भारतीय विद्वान स्वर्गीय डॉ० शतीश्चन्द्र विद्याभूषण पी. एच. डी. आदिने भी यही कहा था कि-जैनशास्त्र भारतीय इतिहासपर अपूर्व प्रकाश डालते हैं। बर्लिन (जर्मनी) विश्वविद्यालयमें संस्कृतके प्रो० डॉ० हेल्मथ वॉन ग्लेसेनेप्प साहब भी लिखते हैं कि:— जैनधर्म सर्व प्राचीन सैद्धान्तिक मत है जो आजतक अपने जन्मस्थानमें अविकृतरूपमें रहा है। (Jainism is the oldest philosophical system that has remained quite unchanged in form in the land of its origin almost upto this day.)

कि भारतवर्षमें धार्मिक प्रभावके कारण समय समयपर कैसे कैसे अत्याचारी राज्यनैतिक परिवर्त्तन होते रहे थे, जिनसे विपक्षी धर्मके ग्रन्थों और इमारतों पर बेदरद हो आक्रमण किया गया था। पारस्परिक विरोधने राष्ट्रीयताका भाव भी काफूर कर दिया था।

आर्ष वैदिक धर्म अर्थात् जैनधर्मकी सरलता, सुगमता और उत्तमता सर्व प्रकट है; क्योंकि वह एक यथार्थ वैज्ञानिक धर्म है। उसकी नींव कार्य कारणके सिद्धान्त पर निर्भर है। "उसमें सात तत्व माने गए हैं जो निम्न प्रकार हैं:—

(१) जीव वा आत्मा (२) अजीव वा प्रकृति (३) आश्रव अर्थात् पुद्गलका जीवमें आना (४) बन्ध अर्थात् कैद (५) संवर अर्थात् पुद्गलके आश्रवको रोकना (६) निर्जरा अर्थात् बंधनको तोड़ना (७) और मोक्ष अर्थात् छुटकारा वा निर्वाण।

इनको ही पुण्य और पापके मिलानेसे (७+२=९) नौ पदार्थ कहे जाते हैं। जगत अनादि निधन है। इसको कभी किसीने उत्पन्न नहीं किया है। इसमें दो प्रकारके पदार्थ पाए जाते हैं; जीव और अजीव। अजीवमें कई पदार्थ सम्मिलित हैं, जैसे आकाश, काल, पुद्गल आदि। परन्तुः इन सबमें जीव और पुद्गल ही विशेषतया मुख्य हैं। जीव अनन्त हैं और पुद्गल परमाणुओंका समुदाय है। जगतके विविध चक्र परिभ्रमण इन जीव और पुद्गलके आपसी मिलापके फलस्वरूप हैं। जो खास २ प्राकृतिक नियमोंपर आधारित हैं। संसारी आत्मायें पुद्गलसे सम्बंधित हैं जिसके कारण उनके स्वाभाविक गुण परिमाणमें ढक गये हैं एवं निस्तेज हो गए हैं। स्वाभाविक गुणोंका इस प्रकार दब जाना और मन्द पड़ जाना

उस पुद्गलकी तौल और परिमाणपर निर्भर है जो प्रत्येक जीवके साथ लगा हुआ है। पुद्गलसे पूर्ण छुटकारा पा लेनेका नाम मोक्ष है, जिसके प्राप्त होनेपर जीवके स्वाभाविक गुण जो मंद और निस्तेज होगए थे फिर नये सिरेसे पूर्ण रूपेण प्रकाशमान (उदित) हो जाते हैं। शुद्ध जीवके स्वाभाविक गुणोंमें (१) सर्वज्ञता (२) आनंद (३) और अमरत्व शामिल हैं; इसी कारण प्रत्येक मुक्त जीव सर्वज्ञ, आनंदसे भरपूर और अमर होजाता है, कारण कि उस समय उसके साथ पुद्गल नहीं होता है। इस कारणसे ही प्रत्येक मुक्त जीव परमात्मा कहलाता है। परमात्मा जगतके सबसे ऊँचे भागपर जिसको सिद्ध शिला कहते हैं, रहते हैं, जहांसे गिर-कर (च्युत होकर) या निकलकर फिर कभी वह सांसारिक परिभ्रमण और दुःखोंमें नहीं पड़ते हैं। शेपके, अनंत जीव आवागमनके चक्रमें पड़े चकराया करते हैं। वारम्वार जन्मते और मरते हैं। आवाग-मनमें चार गतियां हैं, जिनके नाम (१) देवगति (२) नरकगति (३) मनुष्यगति (४) और तिर्यंचगति हैं। देवगति स्वर्गवासी देवादिसे संबंध रखती है। नरकगतिका मतलव नारकी जीवोंसे है। मनुष्यगतिका भाव मनुष्य जीवनसे है। शेपके सब प्रकारके जीव तीर्यञ्चगतिमें दाखिल हैं, जैसे नभचर, थलचर, कीड़े, मकोड़े, वनस्पति, पृथ्वी आदि। इन गतियोंमेंसे प्रत्येकमें विभिन्न अवस्थाएं जीवनकी है, परंतु गति चार ही हैं। स्वर्गवासी देवगण विशेष सुख और आनन्दका उपभोग करते हैं; किन्तु दुःखका विल्कुल वहां भी अभाव नहीं है। नारकी जीव अत्यन्त दुःख उठाते हैं। मनुष्य सुख और दुःख दोनों भोगता है किन्तु उसके भागमें

दुःखका परिमाण विशेष है और तिर्यंचगतिमें भी दुःख और तकलीफ विशेष है। बार २ जन्मना और मरना इन चारों गतियोंमें है। (केवल वे ही जीव, जो आवागमनकी सीमाके बाहर हो जाते हैं, सदैवका जीवन उपभोग करते हैं।) परन्तुः इस बातका भय यहां भी नहीं है कि एक जीवनका पुण्य आगामी जीवनमें न मिले। पुण्य और पापका फल जीवके साथ एक जन्मसे दूसरे जन्मको जाता है और उसीके अनुसार आगामी जन्म (जीवन) का गतिबन्ध होता है।

आवागमनसे छुटकारा, व्रतोंके पालने, आचार विषयक नियमोंको मानने जैसे अहिंसा, दूसरोंके प्रति क्षमा धारण करना आदिसे और शारीरिक एवं आन्तरिक तपस्या, जैसे स्वाध्याय, ध्यान, उपवास आदि करनेसे होता है। व्रत पांच हैं। अहिंसा (किसीको पीड़ा न पहुंचाना) सच बोलना, चोरी न करना, कुशील (व्यभिचार) न पालना और सांसारिक वस्तुओंकी लालसा न करना। खुलासा यह है कि निर्वाण सच्ची श्रद्धा अर्थात् सम्यग्दर्शन (तत्वोंके विश्वास), सच्चे ज्ञान (तत्वोंका ज्ञान) और सच्चे चारित्र (शास्त्रोंमें बताए हुए व्रतों आदिको पालने) से प्राप्त होता है। इस सम्यक् रत्नत्रय मोक्षमार्गका निर्माण परमात्पद पालेनेके अर्थ हुआ है; जो जीवका निजी स्वभाव है। अनंत जीवोंने इस रत्नत्रय मार्गका अनुसरण कर मोक्ष लाभ किया है। जो कि एक मात्र निर्वाण प्राप्तिका मार्ग है। यह मार्ग दो विभागोंमें विभक्त है। प्रथम सहल गृहस्थके लिए और द्वितीय कठिन साधुओंके वास्ते।

"गृहस्थधर्मका प्रारम्भ सम्यग्दर्शनकी प्राप्तिसे होता है।

जिसके पश्चात् गृहस्थ व्रतोंका पालन प्रारम्भ करता है और धीरे धीरे ग्यारह प्रतिमाओंको पालते हुए ऊपर चढ़ता हुआ सन्यास पदवीको पा लेता है। इस समयसे उसे साधुमार्गके कठिन व्रतोंका पालना अवश्यम्भावी हो जाता है। ये ग्यारह प्रतिमाएं गृहस्थके लिए हैं। जिनमेंसे हर पिछली प्रतिमा पहिली प्रतिमाकी निस्वत विशेष बढ़ी हुई और उसको अपनेमें सम्मिलित किए हुए है। साधुका जीवन अति कठिनसाध्य जीवन है। वह अपनेको संसारसे नितान्त विलग करके और अपनी इच्छाओं एवं विषयवासनाओंको निरोधित करके शुद्ध आत्मध्यानमें लीन हो जानेका प्रयत्न करता है। इस प्रकार तप और उपवास करते हुए वह अपनी आत्माको पुद्गलसे अलग कर लेता है और कर्म और अवागमनकी जड़ उखाड़ डालता है। कर्मोंके नाश होने ही जीव सर्वज्ञ और अमर होजाता है एवं अपने स्वाभाविक आनंदसे भरपूर होजाता है, जिसमें भविष्यमें कभी भी कमताई नहीं होती है। जैनधर्मके अनुसार जीवके साथ आवागमन लगा रहता है जबतक कि वह निर्वाणपद प्राप्त न करले। कुछ जीव ऐसे हैं जो कभी भी मुक्त न होंगे यद्यपि परमात्मपद उनका भी स्वाभाविक स्थान है। इसका कारण यह है कि उनके कर्म ऐसी बुरी तरहके हैं कि उनको कभी भी रत्नत्रयकी प्राप्ति नहीं होसक्ती है, अर्थात् उन्हें कभी भी सम्यग्दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक्चारित्रका भान नहीं हो सक्ता है। जिनके विदून मोक्ष नहीं मिल सक्ती है। (ज्ञानकी कुंजी Key of Knowledge असहमत संगम आदिको और आर्ष जैन ग्रन्थोंको पढ़नेसे) जैनधर्मकी सिद्धान्त शैली वैज्ञानिक ढंगकी है, यह प्रगट

होजाता है, और इसी कारणसे उसमें किसी देवी देवताओंके लिए स्थान नहीं है यद्यपि वह प्रत्येक कालमें जो अनंत समयका है, चौवीस सच्चे गुरुओं अथवा तीर्थंकरोंकी उत्पत्तिको मानता है। तीर्थंकर आवागमनके समुद्रके पार पहुंचनेके लिए जीवोंको योग्य मार्ग वताते हैं। ये महात्मा या महापुरुष किसी वड़े या छोटे देवताके अवतार नहीं हैं वल्कि मनुष्य है जो स्वतः भी मार्गपर चलकर परमात्मपद प्राप्त करते हैं जिसको बादमें वे दूसरोंको वताते हैं।"*

जैनधर्मकी उक्त सैद्धांतिक शैली अनादि कालसे इसी रूपमें है। वह स्वयं वैज्ञानिक सत्य है। इसलिए उसमें हिन्दू धर्मकी भांति समयानुसार रूपांतर नहीं किए गए हैं उसके सिद्धान्त संपूर्ण रूपमें पूर्ण हैं। जो सैद्धांतिक वातें उसमें वर्णित हैं, उसमेंसे वहुतसीको आधुनिक विज्ञान (Science) की खोज भी प्रमाणित करती जाती है; जैसे जल और वनस्पतिमें जीवका होना सायन्सने अब प्रगट किया है, परन्तु जैन सिद्धान्तमें उनमें पहिले ही जीवका होना वतला दिया था। आधुनिक विज्ञान जिस प्रकार सत्यांशको प्रगट कर रहा है उसके दूसरी प्रकार जैनधर्ममें पूर्ण सत्य सिद्धान्त विद्यमान हैं। इसके समान सरल वैज्ञानिक ढंगका वर्णन अन्य कहीं नहीं मिलता है।

गृहस्थ लोगोंके लिए हम इसमें एक अतीव मूल्यवान आत्मोन्नतिका क्रम पाते हैं। हम पहिले ही देखते हैं कि वही यथार्थ गृहस्थ–श्रावक कहलानेका अधिकारी हो सक्ता है जो ऊपर वताए हुए पांच व्रतोंका पालन करता है और मधु, मांस, मदिराका

* देखो असहमत संगम पत्र ८–१३।

त्यागी होता है। इस प्रकार उसका चारित्र निर्मल होता है और वह आधुनिक सभ्यताके लिहाजसे एक उत्कृष्ट शीलवान स्वावलम्बी नागरिक होता है। इस लिये ही वर्तमान जैनियोंका चारित्र भी भारतमें सर्वोच्च शुद्ध है। जैन सभ्यता इसी हेतुसे परमोच्च है। गृहस्थोंकी आत्मोन्नति दिनोंदिन उदित होनेके लिए जैन धर्ममें उनके लिए छह आवश्यक कार्य बतलाए गए हैं जो उनको नित्य प्रति करना चाहिए, अर्थात् यज्ञ-पूजा, गुरु उपासना, स्वाध्याय, संयम, तप, दान। संसारमें ऐसा कोई भी मनुष्य नहीं है जिसका कोई न कोई आराध्यदेव न हो। और सर्वोत्तम पूज्यनीय परमहितैषी रागद्वेष रहित सर्वज्ञ जिनेन्द्र भगवान ही हैं। उनका ही आराधन करना आवश्यक है। इस यज्ञ-पूजा विधानका वर्णन जैन शास्त्रोंमें विशेष रूपसे दिया है। ब्राह्मण वेदोंमें वर्णित हिंसावर्धक यज्ञ यथार्थ नहीं हैं। आर्ष वेदोंमें कहे हुए निम्न यज्ञ ही वास्तविक यज्ञ हैं।

जैन शास्त्रोंमें सबसे पहिले नित्यमह यज्ञ कहा गया है। इसमें प्रतिदिन उपासक अपने घरसे गन्ध, पुष्प, अक्षत आदि पूजाकी सामग्री ले जाकर जिनदेवकी पूजा करता है, अथवा जिन मंदिर आदि बनवाता है। जिन मंदिर तथा पाठशाला आदिमें पूजा स्वाध्याय तथा अध्ययन आदिके लिये भक्तिपूर्वक राजनीतिके अनुसार सनद आदि लिखकर देता है। दूसरा आष्टाह्निक और ऐन्द्रध्वज कहा गया है। नंदीश्वर पर्वके दिनोंमें अर्थात् प्रतिवर्ष आषाढ़ कार्तिक और फाल्गुण महीनेके शुक्लपक्षकी अष्टमीसे पौर्णिमातक अंतके आठ दिनोंमें जो अनेक भव्यजन मिलकर अर-

हंतदेवकी पूजा करते हैं उसे आष्टान्हिक यज्ञ कहते हैं तथा जो इंद्र प्रतींद्र और सामानिक आदि देवोंके द्वारा एक विशेष जिनपूजा की जाती है उसे ऐंद्रध्वज मह कहते हैं।

अनेक शूरवीर आदि लोगोंने जिनपर मुकुट बांधा हो उन्हें मुकुटबद्ध राजा कहते हैं। ऐसे मुकुटबद्ध राजाओंके द्वारा भक्तिपूर्वक जो जिनपूजा की जाती है उसे चतुर्मुख, सर्वतोभद्र अथवा महा-मह कहते हैं। यह यज्ञ प्राणिमात्रका कल्याण करनेवाला है इस लिए इसका नाम सर्वतोभद्र है। चतुर्मुख अर्थात चार दरवाजेवाले मंडपमें किया जाता है इसलिए चतुर्मुख कहलाता है। और अष्टा-न्हिकाकी अपेक्षा बड़ा है इसलिये इसे महामह कहते हैं। इस प्रकार इसके तीनों ही नाम सार्थक हैं। मुकुटबद्ध राजालोग भक्तिपूर्वक ही इसे करते हैं, चक्रवर्तीकी आज्ञा अथवा भयसे नहीं करते हैं। यह यज्ञ भी कल्पवृक्षके समान है, अंतर केवल इतना है कि कल्पवृक्षमें संसारभरको इच्छानुसार दान आदि दिया जाता है। याचकोंकी इच्छानुसार संसारभरके लोगोंके मनोरथकोंको पूर्ण कर चक्रवर्ती राजाओंके द्वारा जो अरहंतदेवकी पूजा की जाती है उसे कल्पवृक्ष मह कहते हैं। वलि अर्थात् नैवेद्य आदि भेट, स्नपन आदि विशेष पूजाऐं सब नित्य महादिकोंमें ही अंतर्भूत हैं।* इस प्रकार गृह-स्थोंके प्रथम कर्तव्य यज्ञ-पूजाका विशेष वर्णन है, जिसका भाव शुभ भावोंको उपार्जन करना मात्र है जो स्वयं प्राप्त होते हैं। यह सर्व विधान बिदून किसी इच्छा—वाञ्छाके शुद्ध परिणामों द्वारा केवल भक्ति भाववश किये जाते हैं। दूसरे कर्तव्यमें

* देखो सागारधर्मामृत पूर्वार्द्ध ९७–९९।

गुरुकी सेवा करनेका उद्देश है। संसारमें प्रत्येक मनुष्यके कोई न कोई गुरु अवश्य होते हैं, परन्तु यथार्थमें निर्ग्रन्थ गुरु सर्व श्रेष्ठ हैं। क्योंकि ये ही गुरु महाराज जीवको संसारसे उबारनेवाले मार्गमें लगाने हैं। इसलिए उन्हीकी उपासना करना योग्य है। स्वाध्याय पठन—पाठन अध्ययन मनन श्रवण करना तीसरा कर्तव्य है। प्रत्येक प्राणी कुछ न कुछ अवश्य पढ़ा करता है अथवा कोई न कोई पुस्तक या शब्द सुना करता है, इसलिए आत्म—कल्याणके निमित्त हमको यथार्थ जिनोक्त शास्त्रोंका स्वाध्याय करना चाहिए जिससे सम्यज्ञान प्राप्त हो और कर्म कलंक नष्ट हों। चौथा कर्तव्य संयम एक तो प्राणि रक्षा रूपमें है और दूसरे इंद्रिय वृत्ति निवृत्ति रूपमें है। संयम पालनेका उद्देश्य लौकिक निःसार सुख नहीं है किन्तु आत्म—कल्याण करनेमें है। पांचवा कर्तव्य तप है जो इष्ट प्रयोजनका लक्ष्य न रखकर कषायोंके घटानेके लिए और आत्म कैवल्य प्राप्त करनेके लिए आवश्यक है। सामायिक आदि करना ही गृहस्थोंके लिए तप है। अंतिम कर्तव्य दान है। जिस पुरुषके पास जो कुछ भी सम्पदा, बल, ऐश्वर्य है वह अन्तमें छोड़ना पड़ता है इसलिए उचित है कि उनको अनुचित रीत्या नष्ट न करके आहार, औषध, अभय और विद्या दानमें खर्च किया जाय जिससे कि यशोलाभके साथ साथ आत्मोउन्नति हो। इस प्रकार गृहस्थोंके मुख्य कर्तव्योंका वर्णन है जिससे वास्तविक रूपमें भाव यही है कि कषायोंको कम करते हुए आत्माको उन्नति पथपर जाना चाहिए।

इस प्रकार जैनधर्म एक स्वतंत्र वैज्ञानि सैद्धांतिक धर्म है।

इसके तत्व और सभ्यता पूर्ण रूपमें वास्तविक हैं। इसके विषयमें यह कहना कि यह धर्म केवल साधुके लिए है बिल्कुल मिथ्या प्रगट होता है। जबसे जैन धर्म है तबहीसे उसके अनुयायी साधारण गृहस्थ-श्रावक और श्राविका एवं साधुजन-मुनि और आर्यिका एवं उदासीन गृहत्यागी रहे हैं और उनके चारित्र संबंधी नियम भी प्रथक्२ हैं जैसे हम पहिले देख आए हैं। और इसके विषयमें यह कहना कि वह एक 'मिशनरी' धर्म नहीं है-अर्थात् उसका प्रचार दिग्दिगान्तरोंमें नहीं किया जा सक्ता है, उसके सिद्धांतोंके प्रति अनभिज्ञताको प्रकट करना है। जैन शास्त्रोंमें जैन साधुओंके लिए केवल वर्षाऋतुमें चार महीने एक जगह रहनेका विधान है अन्यथा उनके सदैव विहार करते रहने और यथार्थ धर्मोपदेश देनेका उल्लेख है। और हम अगाड़ी चलकर देखेंगे कि इसी कारण जैनधर्मने समय-समयपर स्वेडेन-नार्वे जैसे दूरस्थ देशों तक अपना प्रकाश फैलाया था।

इस प्रकार जैन धर्मकी शिक्षा बहुत ही गहन और गम्भीर और उच्च कोटिकी है। उसमें आत्मा सम्बन्धी संपूर्ण प्रश्नोंको अतीव दार्शनिक रीतिमें वैज्ञानिक ढंग पर प्रतिपादन किया गया है। इस लिए संसारमें वह अद्वितीय वैज्ञानिक ढंगका निराला मत है।

अवैदिक मत जैन धर्म जब कि उत्कृष्ट अपने ढंगका एक मत है तब उसकी सभ्यता भी एक अतीव उच्चकोटिकी होगी। जैन धर्मके इस युगकालीन आदि प्रचारक श्री ऋषभदेवने ही इस भारतीय आर्य्य सभ्यताकी जड़ जमाई थी और उसका चित्र

अधिकतर जैन साहित्यमें ही मिल सक्ता है, क्योंकि उस अज्ञात समयकी कोई भी सामिग्री अब प्राप्त होना असंभव है। परन्तु उसी संभ्यतासे संस्कारित हो जो पश्चात्में भगवान महावीरके समयके वा उनके पश्चात्के जो जैन स्तूप–भवन–मंदिर आदि मिलते हैं, उनसे उसकी उत्कृष्टताका भान हो जाता है। आर्य्योंके आर्ष-वैदिक मत जैनधर्मका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। अब उनके सामाजिक राजनैतिक जीवनका चित्र इस प्रकारका होगा।

कर्मभूमिके प्रारम्भमें जो आर्य्य बसते थे उन्हें अपने सांसारिक जीवनोपयोगी कर्तव्योंका भान नहीं था, क्योंकि उससे पहिले भोगभूमि मौजूद थी, जिसमें पुण्य प्रभाव कर सर्व भोगोपभोगकी सामिग्री स्वतः ही एक प्रकारके उदार वृक्षोंसे मिल जाती थी। इसलिए भगवान ऋषभनाथने उनको कृषि, असि, मसि आदि दैनिक कृत्य बतलाए थे। इससे प्रकट होता है कि उस समय कृषि आदि कर्म मनुष्योंको मालूम थे। उनके पास कृषिशास्त्र, वास्तु–विद्या, शास्त्र–निर्माण–विद्या आदिका पूर्ण परिज्ञान था और उसी समय ग्राम, खेट, पुर आदि भी बनाए गए थे, इससे यह भी विदित होता है कि वह लोग इधर उधर उठाऊ चूल्होंकी तरह मारे २ नहीं फिरते थे, बल्कि सुन्दर गृहादि बनाकर रहते थे और राज्यकी व्यवस्था करते थे। गेहूं, चावल आदिकी खेती करते थे, परन्तु कर्मभूमिके प्रारम्भमें चावलकी खेती स्वतः उग आई थी, उसीपर लोग बसर करते थे। और पश्चात्में भगवान ऋषभदेवके बतलानेपर वह सर्व प्रकारकी खेती करने लगे थे। भोगभूमिके अंतमें पहिले लोग वनोपवनसे प्राप्त

फलादिक पर निर्वाह करते थे, फिर भगवान ऋषभदेवके कृषि आदि कर्म बतानेपर उन्होंने रोटी आदि बनाकर खाना प्रारम्भ किया था और वे पशुओंको भी पालने लगे थे। उस समयका एक प्रधान धन पशु ही थे, क्योंकि जहांपर भगवान ऋषभके पुत्र सम्राट् भरतकी राज्यसम्पदाका वर्णन है उसमें "एक करोड़ हल, तीन करोड़ कामधेनु गाएँ, अठारह हजार घोड़े, और चौरासी लाख हाथी"* भी बताए हैं। इससे प्रकट है कि उस प्राचीन समयसे ही भारतमें पशुओंकी कदर चली आ रही है। भगवानने उस समय प्रजाको भक्ष्य अभक्ष्य पदार्थोंका भी ज्ञान करा दिया था, इस लिए उस समय आर्यलोग शाकाहारी ही थे। शिल्पकी सब बातें भी उनको बतला दी गई थीं, जिससे वह कपड़ा बुनना, धातुको काममें लाना आदि बातें भी जानते थे। उनके शस्त्रोंमें धनुषबाणकी मुख्यता है, पर तलवार, गदा, मुग्दर, बर्छा आदि भी उस समय प्रचलित थे। उनका रणका मुख्यवाहन रथ ही था। वे मल्लयुद्ध और मुक्कोंके युद्ध (Boxing) से भी परिचित थे। उस समयका जातिभेद भी अबसे बिल्कुल विभिन्न था। प्रारंभमें केवल तीन वर्ण ही थे और उनमें परस्पर वर्णान्तर्गत विवाह सम्बन्ध होता था।× स्वयंवरकी रीति भी प्रारंभ हो गई थी और बहु विवाह भी प्रचलित था। पश्चात्‌में संसारसे उदासीन आत्म मुमुक्ष मनुष्योंका एक अन्य वर्ण ब्राह्मण नामसे स्थापित हुआ था, परन्तु जातिका नेतृत्व क्षत्री वर्ण ही करता था। उस समयके मनुष्य बड़े धर्मनिष्ठ होते थे। अपने

*हरि० पु० सर्ग ११ श्लोक १२८। ×देखो विवाहक्षेत्र प्रकाश।

षडावश्यक कर्म नित्य प्रति किया करते थे। गोत्रके बड़े लोग ही मुखिया होते थे। और वही अपनी गोत्रज संतानको धर्म-कर्म कुशल बनाते थे। जैसे कि भगवान ऋषभनाथने अपनी पुत्री व पुत्रोंको स्वयं लौकिक एवं पारिलौकिक विद्यामें पारंगत किया था। जाति पांतिका यह उदार क्रम भगवान महावीरके कुछ पश्चात् तक ऐसा ही रहा; परन्तु उपरान्तमें वह जटिल होता गया। उस समयके धर्मालु आर्योंको शारीरिक पशु बलपर घमंड नहीं था। वे अपने आत्मबलपर ही विश्वास रखते थे और अपने शत्रुओंको मारते और अपमानित नहीं करते थे, बल्कि उनको प्राणदान देकर अपना हितैषी बना लेते थे। उस समय अभव्य—अनार्य भी अवश्य थे और वह धर्मरत नहीं थे। अपने मनोनुकूल व्यवहार आचरण करने थे। भगवान ऋषभने ही उस समयसे लिपि कलाका प्रचार किया था।* उनने अपनी सार्वज्ञावस्थामें जो शास्त्र बताए थे वह अपने आध्यात्मिक आदि विषयोंमें अपूर्व थे। उस समय स्त्रियोंको बड़ी उच्च दृष्टिसे देखा जाता था। विवाहमें स्त्रीकी इच्छाके अनुसार वर चुन लिया जाता था; अर्थात् स्त्री ही वर पसन्द करती थी। और वह अपने श्वसुर गृह जाकर अलग महलमें रहती थी; क्योंकि विविध रानियोंके अलग २ रणवास होनेका उल्लेख मिलता है। परदेका रिवाज उस समय नहीं था। राज्य सभामें राजा-महाराजा उनको अर्ध आसन दिया करते थे। उस समय संगीत शास्त्र और वीणा वादनका विशेष प्रचार था। एवं उस समयकी राज्य नैतिक पद्धति भी बड़ी उदार थी और प्रजाको यहां तक अधिकार प्राप्त

---

* देखो हि० वि० को० भाग १ पृष्ठ ६४।

था कि वह अन्यायी राजाको राज्यपदसे अलग कर देते थे। इस तरह एक प्रकारकी प्रजातंत्रक राज्यप्रणाली थी, परन्तु राजा अवश्य होते थे और शूरवीर आदि लोगोंसे उनके मुकुट बांधे जानेके कारण वे मुकुटबद्ध राजा कहलाते थे और समस्त पृथ्वीको वश करनेवाले चक्रवर्ती कहलाते थे, तथापि इन लोगोंकी युद्ध नीति भी उत्कृष्ट थी। शरण आँए हुए अथवा निहत्थे वा घायल शत्रु पर वह प्रहार नहीं करते थे, बल्कि जहां सम्भव होता था, वहां स्वयं दोनों ओरके सम्राट् आपसमें युद्ध कर लेते थे। और जो जिसको परास्त कर देता था वह अपने विजयी विपक्षीकी शरण आ जाता था। इस तरहसे दोनों ओरके लाखों योद्धाओंके प्राण बच जाते थे।

भगवान ऋषभदेवने ग्राम, पुर आदि बसाकर उनमें बसनेवाले नागरिकोंको उन्होंने उनकी आवश्यक्ताके अनुसार भूमि बांट दी थी और प्रत्येक अपनी उसी भूमिसे कृषि आदि कर गुजारा करते थे। उसे बेचते नहीं थे; क्योंकि राजाकी ओरसे ही प्रत्येक नागरिकके लिए भूमिकी सीमा नियत थी। ग्रामके अन्य नागरिक व्यवसाय आदि भी किया करते थे और संभवता जिस कुटुम्बका वह सदस्य होता था, उसके द्वारा उसे उस व्यवसायके उपलक्षमें कृषिके उपार्जनमेंसे कुछ दिया जाता था। भगवानने जिस अपूर्व श्रुतको बताया था, वह अर्ध मागधी भाषामें " सूत्ररूप " था। उस समयके व्याकरण, गद्य-पद्यके शास्त्र विशिष्ट थे। बहुधा लोग अपनी उत्कृष्ट स्मरण शक्तिसे उन्हें कंठस्थ रखते थे और इस प्रकार उनको लिपिबद्ध करनेकी भी आवश्यक्ता नहीं पड़ती थी।

लेखन कलाका व्यवहार वह लोग अपने जीवनके अनेक साधारण कृत्य, व्यापार आदिके लिए व्यवहृत करते थे।

उपर्युक्त वर्णनकी पुष्टि जैन शास्त्रोंके वर्णनोंसे होती है; जिनका कथन भारतीय इतिहासके लिए एक आवश्यक सामग्री है। तिसपर भी आजकलके विद्वान जिस ऋग्वैदिक समयकी सभ्यताका वर्णन करते हैं; उससे पूर्व भगवान ऋषभदेव हुए थे, इसलिए इस युगकालीन प्रारंभिक जैन सभ्यताके उक्त दिग्दर्शनमें कुछ भी अन्योक्ति नहीं भासती; क्योंकि ऐसी ही वास्तविक विस्तृत सभ्यतासे ही अगाड़ी चलकर वैदिक सभ्यता अपना प्रथक रुप धारण कर सकी है।

तिसपर भी यह मानी हुई बात है कि जो जाति सभ्यतामें चढ़ी बढ़ी होगी, वह साहित्य संसारमें भी अग्रसर होगी। हम आज भी जैन धर्मके अगाध साहित्यसे परिचित हैं। प्राकृत भाषामें मुख्यता जैन साहित्यकी है। संस्कृतमें भी अपरिमित उत्कृष्ट ग्रन्थ जैनियोंके ही हैं। उसके मुख्य वैय्याकरणोंमें सर्व अग्रेसर एवं सर्व अधिक जैन ही हैं। तामील और कनड़ी साहित्य भी जैन कवियोंकी सुललित मूल्यवान वाणीका ही फल है। और साहित्य संसारमें उत्कृष्टता पाना तब ही संभव है, जब मनुष्य यथार्थ सभ्यताकी उत्कृष्टताको पहुंच चुका हो। जैन सभ्यतामें सब बातें सुनियमित थीं, इसीसे उसमें आर्थिक चिन्ताकी विशेष आकुलता मनुष्यको नहीं सताती थी।

व्यक्तिगत स्वतंत्रता और स्वाधीनताका ध्यान जैन सभ्यतामें एक गोचरणीय विषय है, इसी लिए उसमें प्रत्येक वर्णके लिए

अपनी स्थितिके अनुसार धर्माचरण करनेका द्वार खुला हुआ है। उसकी सभ्यताको पराकाष्ठा इससे भी विदित है कि उस समयके मनुष्योंने कितनी उन्नति उसमें न प्राप्त कर ली थी, जो स्त्रियां भी अपने आत्मकल्याणके लिए संसारका ममत्व छोड़ देतीं थीं और अपनी संसारमें फंसी हुई बहिनोंको धर्मका मार्ग बतलातीं थीं। उनकी सम्भाल रखतीं थीं।

उस समयके आर्य्योंके यथार्थ महाकाव्य ग्यारहवें कल्याणवाद पूर्वमें कथित थे। और वे उन लोगोंको कंठस्थ याद थे। यह काव्य महाभारत और रामायणसे कहीं विस्तृत और महत्वपूर्ण थे। ज्यों ज्यों समय बढ़ता गया, त्यों त्यों मतमतान्तरोंके बढ़नेसे प्राकृत आर्ष, आर्य सभ्यता (जैन सभ्यता) में भी अन्तर पड़ता गया। परन्तु विश्वस्ततया वह भगवान शीतलनाथके समय तक अपने वास्तविक रूपमें मौजूद थी। पश्चात् राज्यनैतिक सामाजिक आदि व्यवस्थाओंमें रूपान्तर होने लगे और भगवान महावीरके समयमें आकर वह विशेष निश्चित होगई, क्योंकि समयानुसार द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावका प्रभाव इस दरमियानमें उसपर अवश्य पड़ा था।

इसी जैन सभ्यताके चमकते हुए रत्न श्री तीर्थंकर भगवानके अतिरिक्त नाभि, श्रेयांस, बाहुबली, भरत, रामचन्द्र, हनूमान, रावण, कृष्ण, भीम, महादेव आदि नररत्न और ब्राह्मी, चंदनबाला, राजुलदेवी, कौशल्या, मृगावती, सीता, सुभद्रा, द्रौपदी, सुलसा, कुंती, शीलवती, दमयंती, प्रभावती, शिवा आदि महिला मणि थे। यदि इस कालके इन सब महत् रत्नोंको यहां प्रकाशित किया जाय, तो मेरे विचारसे इस पुस्तकमें इनका समावेश न होसके और न वह सब प्रका-

शित ही किए जासकें। इनका उन्नत प्रकाश विविध आचार्योंने अपने महत्वशाली ग्रन्थोंनें किया है वहांसे जानना चाहिए। अस्तु, जैन धर्म और जैन सभ्यताका दिग्दर्शन करके इस सभ्यताके समयके साधुओंपर एक नज़र डालते चलेंगे। भगवान ऋषभने संसारसे विरक्त नरनारियोंके लिए एक साधु संघकी व्यवस्था की थी, उसमें चार कक्षाएं रक्खीं थीं, अर्थात् मुनि संघ, आर्यिका संघ, श्रावक संघ और श्राविका संघ। मुनि संघमें नग्न दिगम्बर भेपधारी* निस्परिग्रह साधुजन एक २ आचार्यकी देख भालमें रह आत्मकल्याण किया करते थे। आर्यिका संघमें वह साध्वी स्त्रियां रहती थीं जो संसारसे उदासीन हो संसारसे कतई नाता तोड़ आई थीं। यह दुर्द्धर तपश्चरण आदि तपा करतीं थीं। यह श्वेत धोती धारण करतीं थीं, क्योंकि स्त्रीके लिए लज्जाका निवारण करना एक दुष्कर बात है। इस लिए वह स्त्रीभवसे मोक्ष भी नहीं पासक्ती थीं। तीसरे श्रावक संघमें वह श्वेतपट धारी उदासीन श्रावक रहते थे जो ११ प्रतिमाओंका अभ्यास किया करते थे। और

* साधुका यथार्थ प्राकृत भेष परमहंस नग्नावस्था ही है, क्योंकि स्वभावसे ही जीव जन्मते और मरते समय नग्न होता है। भेपभूषा कृत्रिम रूप है, इसलिए अपने स्वभावको पानेके इच्छुक मनुष्यको स्वाभाविक भेपमें रहना लाज़मी है। इस आधुनिक जमानेमें भी लोग इस बातका अनुभव करते हैं और वे नग्न रहते हैं, जैसे जर्मनीका एक सभ्य-सम्प्रदाय। औरंगजेब बादशाहके ज़मानेमें एक मादरजात नंगे मुसलमान फकीरने बादशाहको खिलअतको यह कहकर वापिस कर दिया था कि "जिसने तुमको बादशाही ताज दिया, उसीने हमको परेशानीका सामान दिया। जिस किसीमें कोई ऐब पाया, उसको लिबास पहिनाया और जिनमें ऐब नहीं पाया उन्हें बरहना रहना बतलाया।"

इसी प्रकार श्राविका संघमें व्रती श्राविका रहती थीं। सामान्य जैनी गृहस्थ इनसे भिन्न थे। उनकी गणना तीर्थंकरोंके इस साधु संघसे अलग थी। यह पूर्ण रूपमें धर्म पालनका अभ्यास करते थे। आजकलके अथवा वैदिक कालके वानप्रस्थादिकी तरह यह लोग नहीं थे। इनकी उत्कृष्टता विशेष अनुकरणीय थी। इसप्रकार संक्षिप्त रूपमें भगवान पार्श्वनाथके समय तकके जैन इतिहासका हम पाठ करलेते हैं और इसके साथ हमारा प्रथम भाग समाप्त होता है। इस ही भागके इतिहासको यदि पूर्ण विशद रूपसे लिखा जाय तो मेरे खयालसे वह इस पुस्तकसे चौगुनी होजावे। ऐसा विशद इतिहास भी यथासमय पाठकोंके हाथों तक पहुंचेगा। आशा है इस प्रथम भागसे पाठक समुचित ज्ञान प्राप्त करेंगे। इतिशम् ॥